जब सत्य मन से अपने आत्मा, प्राण और सब सामर्थ्य से परमेश्वर को जीव भजता है तब वह करुणामय परमेश्वर उसको अपने आनन्द में स्थिर कर देता है। जैसे जब कोई छोटा बालक घर के ऊपर से अपने माता-पिता के पास नीचे आना चाहता है वा नीचे से ऊपर उनके पास जाना चाहता है तब हजारों आवश्यकता के कामों को भी माता पिता छोड़कर और दौड़कर अपने लड़के को उठाकर गोद में लेते हैं कि हमारा लड़का कहीं गिर पड़ेगा तो उसको चोट लगने से उसको दुःख होगा। और जैसे माता-पिता अपने बच्चों को सदा सुख में रखने की इच्छा और पुरुषार्थ सदा करते रहते हैं वैसे ही परम कृपानिधि परमेश्वर की ओर जब कोई सच्चे आत्मा के भाव से चलता है, तब वह अनन्तशक्तिरूप हाथों से उस जीव को उठाकर अपनी गोद में सदा के लिए रखता है। फिर उसको किसी प्रकार का दुःख नहीं होने देता है और वह सदा आनन्द में रहता है।

पक्षपात को छोड़कर सत्य ग्रहण और असत्य का परित्याग कर के अर्थ को सिद्ध करना चाहिए। देखो ! सब अन्याय और अधर्म पक्षपात से होता है। जैसे कि मौलवी साहब का वस्त्र बहुत अच्छा है। मुझ को मिले तो मैं उसको ओढ़कर सुख पाऊं। इसमें अपने सुख का पक्षपात किया और मौलवी साहब के सुख-दुःख का कुछ विचार न किया। इसी प्रकार पक्षपात से ही नित्य अधर्म होता है। अधर्म से काम को सिद्ध करना इसी को अनर्थ कहते हैं। और धर्म और अर्थ से कामना अर्थात् अपने सुख की सिद्धि करना इस को काम कहते हैं। और अधर्म अर्थात् अनर्थ से काम को सिद्धि करना इसको कुकाम कहते हैं। इसलिए इन तीनों अर्थात् धर्म, अर्थ और काम से मोक्ष को सिद्ध करना उचित है। इसमें यह बात है कि ईश्वर की आज्ञा का पालन करना इसको धर्म, और उसकी आज्ञा का तोड़ना इसकोअधर्मकहते हैं। सो धर्म आदि ही मुक्ति के साधन हैं और कोई नहीं। और मुक्ति सत्य पुरुषार्थ से सिद्ध होती है; अन्यथा नहीं।

पादरी स्काट साहब—पण्डित जी ने कहा कि सब दुःखों से छूटने का नाम मुक्ति है, परन्तु मैं कहता हूँ कि सब पापों से बचने और स्वर्ग में पहुँचने का नाम मुक्ति है। कारण यह कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था परन्तु शैतान ने उसको बहका के उससे पाप करा दिया। इससे उसकी सब सन्तान भी पापी है। जैसे घड़ी बनाने वाले ने उसकी चाल स्वतन्त्र रक्खी है और वह आप ही चलती है। ऐसे मनुष्य भी अपनी इच्छा से पाप करते हैं तो फिर अपने ऐश्वर्य से मुक्ति नहीं पा सकते और न पापों से बच सकते हैं। इसलिए प्रभु ईसामसीह पर विश्वास किये बिना मुक्ति नहीं हो सकती। जैसे हिन्दू लोग कहते हैं कि कलियुग मनुष्य को पाप कराके बिगाड़ता है इससे उनकी मुक्ति नहीं हो सकती। परन्तु ईसामसीह पर विश्वास करने से वे भी बच सकते हैं।

प्रभु ईसाममीह जिस-जिस देश में गये अर्थात् उसकी शिक्षा जहां-जहां गई है वहां-वहां मनुष्य पापों से बचते जाते हैं। देखो ! इस समय सिवाय ईसाइयों के और किसी के मत में भलाई और अच्छे गुणों की उन्नति है ? मैं एक दृष्टान्त देता हूँ कि जैसे पण्डित जी बलवान् हैं ऐसे ही इङ्गलिस्तान में एक मनुष्य बलवान् था। परन्तु वह मद्यपान, चोरी, व्यभिचार आदि बुरे काम करता था। जब वह ईसामसीह पर विश्वास लाया तब सब बुराइयों से छूट गया। और मैंने भी जब मसीह पर विश्वास किया तब मुक्ति को पाया और बुरे कामों से बच गया। सो ईसामसीह की आज्ञा के विरुद्ध आचरण से मुक्ति नहीं हो सकती। इसलिये सबको ईसामसीह पर विश्वास लाना चाहिए। उसी से मुक्ति हो सकती है और किसी प्रकार नहीं।

मौलवी मुहम्मद कासिम साहब—हम लोग यह नहीं कह सकते कि पण्डित जी ने जो मुक्ति के साधन कहे केवल उन से ही मुक्ति हो सकती है। क्योंकि ईश्वर की इच्छा है जिसको चाहे उसको मुक्ति दे और जिसको न चाहे न दे। जैसे समय का हाकिम जिस अपराधी से प्रसन्न हो उसको छोड़ दे और जिससे अप्रसन्न हो उसको कैद में डाल दे। उसकी इच्छा है जो चाहे सो करे। उस पर हमारा ऐश्वर्य नहीं है। न जाने ईश्वर क्या करेगा। पर समय के हाकिम पर विश्वास रखना चाहिए। इस समय का हाकिम हमारा पैगम्बर है। उस पर विश्वास लाने से मुक्ति होती है। हाँ ! यह बात अवश्य है कि विद्या से अच्छे काम हो सकते हैं परन्तु मुक्ति तो केवल उसी के हाथ में है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—(पादरी साहब के उत्तर में)—आपने जो यह कहा कि दुःखों से छूटना मुक्ति नहीं, पापों से छूटने का नाम मुक्ति है। सो मेरे अभिप्राय को न समझकर यह बात कही है। क्योंकि मैं तो और पहले साधन में ही सब पापों अर्थात् असत्य कामों से बचना कह चुका हूँ। और बुरे कामों का फल भी दुःख कहाता है अर्थात् जब पाप करेगा तो दुःख से नहीं बच सकता इसके अनन्तर और साधनों में भी स्पष्ट कहा है कि अधर्म छोड़कर धर्म का आचरण करना मुक्ति का साधन है। जो पादरी साहब इन बातों को समझते तो कदाचित् ऐसी बात न कहते।

दूसरे, जो आप यह कहते हैं कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था परन्तु शैतान ने बहकाकर पाप करा दिया तो उसकी संतान भी इसी कारण से पापी हो गई। सो यह बात ठीक नहीं है क्योंकि आप लोग ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानते ही हैं। सो जब कि ईश्वर के पवित्र बनाये आदम को शैतान ने बिगाड़ दिया और ईश्वर के राज्य में विघ्न करके ईश्वर की व्यवस्था को तोड़ डाला तो

इससे ईश्वर सर्वशक्तिमान् नहीं रह सकता। और ईश्वर की बनाई हुई वस्तु को कोई नहीं बिगाड़ सकता है।

और एक आदम ने पाप किया तो उसकी सारी सन्तान पापी हो गई यह सर्वथा असम्भव और मिथ्या है। जो पाप करता है वही दुःख पाता है दूसरा कोई नहीं पा सकता और ऐसी बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा। और देखो एक आदम और हव्वा से किसी प्रकार इस जगत् की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती क्योंकि बहन और भाई का विवाह होना बड़े दोप की बात है। इसलिए ऐसी व्यवस्था मानना चाहिए कि सृष्टि के आदि में बहुत से पुरुष और स्त्री परमेश्वर ने रचे।

और जो यह कहा कि शैतान बहकाता है तो मेरा यह प्रश्न है कि जब शैतान ने सबको बहकाया तो फिर शैतान को किस ने बहकाया? जो कहो कि शैतान आप से आप ही बहक गया तो सब जीव भी आप से आप ही बहक गये होंगे फिर शैतान को बहकाने वाला मानना व्यर्थ है। जो कहो कि शैतान को भी किसी ने बहकाया है तो सिवाय ईश्वर के दूसरा कोई बहकानेवाला शैतान को नहीं है। तो फिर जब ईश्वर ने ही सबको बहकाया तब मुक्ति देनेवाला कोई भी आप लोगों के मत में न रहा और न मुक्ति पानेवाला। क्योंकि जब परमात्मा ही बहकानेवाला ठहरा तो बचानेवाला कोई भी नहीं हो सकता। और यह बात परमात्मा के स्वभाव से भी विरुद्ध है क्योंकि वह न्यायकारी और सत्य कामों का ही कर्त्ता है तथा अच्छे कामों में हो प्रसन्न होता है। वह किसी को दुःख देनेवाला और बहकानेवाला नहीं।

और देखो! कैसे आश्चर्य की बात है कि यदि शैतान ईश्वर के राज्य में इतना गड़बड़ करता है फिर भी ईश्वर उसको दण्ड न देता है, न मारता है न कारागृह में डालता है। इससे स्पष्ट परमात्मा की निर्बलता पायी जाती है और विदित होता है कि परमात्मा ही को बहकाने की इच्छा है। इससे यह बात ठीक नहीं। और न शैतान कोई मनुष्य है। जब तक शैतान के माननेवाले शैतान का मानना न छोड़ेंगे तब तक पाप करने से नहीं बच सकते क्योंकि वे समझते हैं कि हम तो पापी हो नहीं। जैसा शैतान ने आदम को और उसकी सन्तान को बहका के पापी किया वैसा ही परमात्मा ने आदम की सन्तान के पाप के बदले में अपने एकलौते बेटे को शूली पर चढ़ा दिया। फिर हम को क्या डर है। और जो हम से कुछ पाप भी होता है तो हमारा विश्वास ईसामसीह पर है वह आप क्षमा करा देगा। क्योंकि उसने हमारे पापों के बदले में जान दी है। इसलिये ऐसी व्यवस्था माननेवाले पापों से नहीं बच सकते।

और जो घड़ी का दृष्टान्त दिया था सो ठीक है। क्योंकि सब अपने-अपने

काम करने में स्वतन्त्र हैं परन्तु ईश्वर की आज्ञा अच्छे कामों के करने के लिये है; बुरे के लिये नहीं। और जो आपने यह कहा कि स्वर्ग में पहुँचना मुक्ति है। शैतान के बहकाने के कारण मनुष्यों में शक्ति नहीं कि पापों से छूटकर मुक्ति पा सकें यह बात भी ठीक नहीं। क्योंकि जब मनुष्य स्वतन्त्र हैं और शैतान कोई मनुष्य नहीं तो आप दोषों से बचकर परमात्मा की कृपा से मुक्ति को पा सकते हैं। और स्वर्ग से आदम गेहूँ खाने के कारण निकाला गया और यह ही आदम को पाप हुआ कि गेहूँ खाया तो मैं आप से पूछता हूँ कि आदम ने तो गेहूँ खाया और पापी हो गया और स्वर्ग से निकाला गया। आप लोग जो उस स्वर्ग की इच्छा करते हैं तो क्या आप लोग वहां सब पदार्थ खावेंगे ? तो क्या पाप नहीं होगा ? और वहां से निकाले नहीं जाओगे ? इससे यह बात भी ठीक नहीं हो सकती।

और आप लोगों ने ईश्वर को मनुष्य के सदृश माना होगा अर्थात् जैसे मनुष्य सर्वज्ञ नहीं वैसे ही आपने परमात्मा को भी माना होगा कि जिससे आप वहां गवाही और वकील की आवश्यकता बतलाते हैं। परन्तु आपके ऐसे कहने से ईश्वर की ईश्वरता सब नष्ट हो जाती है। वह सब कुछ जानता है उसको गवाही और वकील की कुछ आवश्यकता नहीं है। और उसको किसी की सिफारिश की भी आवश्यकता नहीं क्योंकि सिफारिश न जानने वाले से की जाती है। और देखिये ! आपके कहने से परमात्मा पराधीन ठहरता है क्योंकि बिना ईसामसीह की गवाही वा सिफारिश के वह किसी को मुक्ति नहीं दे सकता और कुछ भी नहीं जानता। इससे परमात्मा में अल्पज्ञता आती है कि जिसमें वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ किसी प्रकार नहीं हो सकता। और देखो ! जबकि वह न्यायकारी है तो किसी की सिफारिश और मिथ्या प्रशंसा से न्याय के विरुद्ध कदाचित् नहीं कर सकता जो विरुद्ध करता है तो न्यायकारी नहीं ठहर सकता।

इसी प्रकार जो आप मनुष्य हाकिम के सदृश ईश्वर के दरबार में भी फरिश्तों का होना मानोगे तो और बहुत से दोष ईश्वर में आवेंगे। इससे ईश्वर सर्वव्यापक नहीं हो सकता क्योंकि जो सर्वव्यापक है तो शरीरवाला न होना चाहिये। और जो सर्वव्यापक नहीं है तो अवश्य है कि शरीरवाला हो। और शरीरवाला होने से उसकी शक्ति सब पर घेरने वाली न हुई। और शरीरवाला जितना दूर का ज्ञान रखता है पर उसको पकड़ और मार नहीं सकता। और जो शरीरवाला होगा उसका जन्म और मरण भी अवश्य होगा। इसलिये ईश्वर को किसी एक जगह पर और फरिश्तों का उसके दरबार में होना, ऐसी बातें मानना किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता। नहीं तो ईश्वर की सीमा हो जायगी।

देखो ! हम आर्य्य लोगों के शास्त्रों को यथावत् पढ़े बिना लोगों को उलटा निश्चय हो जाता है अर्थात् कुछ का कुछ मान लिया जाता है। जो पादरी साहब ने कलियुग के विषय में कहा सो ठीक नहीं। क्योंकि हम आर्य्य लोग युगों की व्यवस्था इस प्रकार से नहीं मानते। ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण है कि—

कलिश्शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥

(ऐत० पञ्जिका ७। कण्डिका १५)

अर्थात् जो पुरुष सर्वथा अधर्म करता है और नाममात्र धर्म करता है उसको कलि, और जो आधा अधर्म और आधा धर्म करता है उसको द्वापर और एक हिस्सा अधर्म और तीन हिस्से धर्म करता है उसको त्रेता और जो सर्वथा धर्म करता है उसको सतयुग कहते हैं।

इसके जाने बिना कोई बात कह देना ठीक नहीं हो सकती। इससे जो कोई बुरा काम करता है वह दुःख पाने से कदाचित् नहीं बच सकता। और जो कोई अच्छा काम करता है वह दुःख पाने से बच जाता है; किसी ही देश में चाहे क्यों न हो।

क्या ईसामसीह के बिना ईश्वर अपने सामर्थ्य से अपने भक्तों को नहीं बचा सकता है? वह अपने भक्तों को सब प्रकार से बचा सकता है। उसको किसी पैगम्बर की आवश्यकता नहीं। हाँ! यह सच है कि जब जिस-जिस देश में शिक्षा करनेवाले धर्मात्मा उत्तम पुरुष होते हैं उस-उस देश के मनुष्य पापों से बच जाते हैं। और उन्हीं देशों में सुख और गुणों की वृद्धि होती है। यह भी सब लोगों के लिये सुधार है। इसका कुछ मत से प्रयोजन नहीं। देखो ! आर्य लोगों में पूर्व उपदेश की व्यवस्था अच्छी थी। इससे उस समय में वे सुधरे हुए थे। इस समय में अनेक कारणों से सत्य उपदेश कम होने से जो किसी बात का बिगाड़ हो तो इससे आर्य लोगों के सनातन मत में कोई दोष नहीं आ सकता। क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति के समय से लेके आजतक आर्यों ही का मत चला आता है। वह अब तक कुछ नहीं बिगड़ा।

देखो ! जितने १८०० वा १३०० वर्षों के भीतर ईसाइयों और मुसलमानों के मतों में आपस के विरोध से फिरके हो गये हैं। उनके सामने जो १९६०८५२९७६ वर्षों के भीतर आर्यों के मत में बिगाड़ा हुआ तो वह बहुत ही कम है। और आप लोगों में जितना सुधार है सो मत के कारण नहीं किन्तु पार्लिमेण्ट आदि के उत्तम प्रबन्ध से है. जो ये न रहें, मत से कुछ भी सुधार न हो। और पादरी साहब ने जो इङ्गलिस्तान के दुष्ट मनुष्य का दृष्टान्त मेरे साथ मिलाकर दिया

सो इस प्रकार कहना उनको योग्य न था। परन्तु न जाने किस प्रकार से यह बात भूल से उनके मुख से निकली।

(मौलवी साहब के उत्तर में)—ईश्वर चाहे सो करे ऐसा ठीक नहीं। क्योंकि वह पूर्ण विद्या और ठीक-ठीक न्याय पर सदा रहता है। किसी का पक्षपात नहीं करता। इस कहने से कि जो चाहे सो करे यह भी आता है कि ईश्वर ही बुराई भी करता होगा और उसी की इच्छा से बुराई होती है, यह कहना ईश्वर में नहीं बनता। ईश्वर जो कोई मुक्ति का काम करता है उसी को मुक्ति देता है। मुक्ति के काम के बिना किसी को मुक्ति नहीं देता, क्योंकि वह अन्याय कभी नहीं करता। जो बिना पाप-पुण्य के देखे जिसको चाहे दुःख देवे और जिसको चाहे सुख तो ईश्वर में अन्याय आदि प्रमाद लगता है। सो वह ऐसा कभी नहीं करता। जैसे अग्नि का स्वभाव प्रकाश और जलाने का है। इनके विरुद्ध नहीं कर सकता। वैसे ही परमात्मा भी अपने न्याय के स्वभाव से विरुद्ध पक्षपात से कोई व्यवस्था नहीं कर सकता।

सब समय का हाकिम मुक्ति के लिए परमेश्वर ही है; दूसरे कोई नहीं। और जो कोई दूसरे को माने, उनका मानना व्यर्थ है। मुक्ति दूसरे पर विश्वास करने से कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ईश्वर जो मुक्ति देने में दूसरे के आधीन है या दूसरे के कहने से दे सकता है तो मुक्ति देने में ईश्वर पराधीन है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। वह किसी का सहाय अपने काम में नहीं लेता क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है। मैं जानता हूँ कि सब विद्वान् ऐसा ही मानते होंगे। जो पक्षपात से औरों के दिखाने को न मानते हों तो दूसरी बात है।

इसमें मुझको बड़ा आश्चर्य है कि परमात्मा को "लाशरीक" भी मानते हैं और फिर पैगम्बरों को भी मुक्ति देने में उसके साथ मिला देते हैं। यह बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि परमेश्वर धर्मात्मा मनुष्यों को मुक्ति के काम करने से मुक्ति स्वतन्त्रता से दे सकता है किसी की सहयता के आधीन नहीं। मनुष्य को ही आपस में सहायता की आवश्यकता है; ईश्वर को नहीं। न वह मिथ्या प्रसन्न होनेवाला है। जो मिथ्या प्रसन्न होकर अन्याय करे। वह तो अपने सत्य धर्म और न्याय से सदा युक्त है और अपने सत्य प्रेम से भरे हुए भक्तों को यथावत् मुक्ति देकर और सब दुःखों से बचाकर सदा के लिये आनन्द में रखता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं॥

इतने में चार बज गये। स्वामी जी ने कहा कि हमारा व्याख्यान बाकी है। मौलवी साहब ने कहा कि हमारे नमाज का समय आ गया। पादरी स्काट साहब ने स्वामी जी से कहा कि हमको आपसे एकान्त में कुछ कहना है सो

वे दोनों तो उधर गये। इधर एक ओर तो एक मौलवी मेज पर जूता पहने हुए खड़े होकर और दूसरी ओर पादरी अपने मत का व्याख्यान देने लगे।

और कितने ही लोगों ने यह उड़ा दिया कि मेला हो चुका। तब स्वामी जी ने पादरी और आर्य लोगों से पूछा कि यह क्या गड़बड़ हो रहा है? मौलवी लोग नमाज पढ़कर आये वा नहीं? उन्होंने उत्तर दिया कि मेला तो हो चुका। इसपर **स्वामी जी** बोले कि ऐसे झटपट मेला किसने समाप्त कर दिया? न किसी की सम्मति ली गई न किसी से पूछा गया। अब आगे कुछ बातचीत होगी वा नहीं?

जब वहाँ बहुत गड़बड़ देखी और संवाद की कोई व्यवस्था न जान पड़ी तो लोगों ने स्वामी जी से कहा कि आप भी चलिये। मेला तो पूरा हो ही गया। इस पर **स्वामी जी** ने कहा कि हमारी इच्छा तो यह थी कि कम से कम पांच दिन मेला रहता। इसके उत्तर में **पादरी साहबों** ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं रह सकते। फिर स्वामी जी आकर अपने डेरे पर धर्मसंवाद करने लगे। उस दिन रात को पादरी स्काट साहब और दो पादरियों के साथ स्वामी जी के डेरे पर आये। स्वामी जी ने कुरसियां बिछवा कर आदरपूर्वक उनको बिठलाया और आप भी बैठ गये। फिर आपस में बातचीत होने लगी—

पादरी साहबों ने पूछा कि—आवागमन सत्य है वा असत्य? और इसका क्या प्रमाण है?

स्वामी जी ने कहा कि—आवागमन सत्य है और जो जैसे कर्म करता है वैसा ही शरीर पाता है जो अच्छे काम करता है तो मनुष्य का और जो बुरे करता है तो पक्षी आदि का शरीर पाता है। और जो बहुत उत्तम काम करता है वह देवता अर्थात् विद्वान् और बुद्धिमान् होता है देखो! जब बालक उत्पन्न होता है तब उसी समय अपनी माता का दूध पीने लगता है। कारण यही है कि उसको पहले जन्म का अभ्यास बना रहता है। यह भी एक प्रमाण है और धनाढ्य, कङ्गाल, सुखी, दुःखी अनेक प्रकार के ऊँच-नीच देखने से विदित है कि कर्मों का फल है। कर्म से देह और देह से आवागमन सिद्ध है। जीव अनादि हैं कि जिनका आदि और अन्त नहीं। जिस योनि में जीव जन्म लेता है उसका कुछ स्वभाव भी बना रहता है। इसी कारण मनुष्य आदि विचित्र स्वभाव और प्रकृति आदि के होते हैं। इससे भी आवागमन सिद्ध होता है।

इसी प्रकार और बहुत से प्रमाण आवागमन के हैं। परन्तु जीव का एक बार उत्पन्न होना और फिर कभी न होना इसका कुछ प्रमाण नहीं हो सकता। क्योंकि जो मैंने कहा उसके विरुद्ध होना चाहिये था, सो ऐसा होना असंभव है। और

फिर यह बात कि मरा और हवालात हुई अर्थात् जब कयामत होगी तब उसका हिसाब और किताब होगा तब तक बेचारा हवालात में रहा मानना अच्छा नहीं।

फिर पादरी साहब चले गये। मौलवियों ने शाहजहांपुर जाकर मुन्शी इन्द्रमणि जी को लिखा कि जो आप यहां आवें तो हम आप से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं परन्तु जब स्वामी जी और मुन्शी जी वहां पहुँचे तो किसी ने शास्त्रार्थ का नाम तक भी न लिया। (दिग्विजयार्क पृ० ४१, लेखराम २६२ से ३१४)

श्रीकृष्ण तथा ईसाईमत

(लुधियाना में पादरी वेरी साहब से प्रश्नोत्तर—अप्रैल, १८७७)

स्वामी जी महाराज ३१ मार्च, सन् १८७७ को लुधियाना पहुँचे और १९ अप्रैल, सन् १८७७ तक वहां रहे। इसी बीच में एक दिन पादरी वेरी साहब मिस्टर कारस्टीफन साहब बहादुर जूडीशल असिस्टैण्ट कमिश्नर सहित वहां आये और स्वामी जी से कृष्ण जी के विषय में शंका की और बातचीत के बीच में कहा कि कृष्ण जी के ऐसे कामों के साथ उनका महात्मा होना बुद्धि स्वीकार नहीं करती। स्वामी जी ने कहा कि यह जो अभियोग लगाये जाते हैं सब निर्मूल हैं। उन्होंने ऐसा कोई कार्य्य नहीं किया परन्तु बुद्धि के स्वीकार करने के विषय में तो क्या कहूँ, जब बुद्धि यह स्वीकार कर लेती है कि ईश्वर की आत्मा कबूतर के रूप में एक मनुष्य पर उतरी तो इसके स्वीकार करने में कुछ अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए। (लेखराम पृ० ३१५)

वेद और गंगा-यमुना

(कुछ ब्रह्मसमाजी सज्जनों से लाहौर में प्रश्नोत्तर—अप्रैल, १८७७)

जब स्वामी जी लाहौर में थे तो एक दिन समाज के मकान में जो अनारकली में था, ब्रह्मसमाज के लोग मिलकर आये और स्वामी जी से कहा कि वेदों में मूर्त्तिपूजा का वर्णन स्थान-स्थान पर है। पंडित भानुदत्त ब्रह्मसमाजियों की ओर से स्वामी जी से बातचीत कर रहे थे। विशेष रूप से उस श्रुति की भी चर्चा चली जिसमें गंगा, यमुना शब्द आते हैं। इस पर आक्षेप यह था कि वेदों में गंगा, यमुना की पूजा भी लिखी है।

स्वामी जी ने कहा कि यदि आप लोग समस्त प्रकरण पढ़ लेते तो यह शंका न करते। यहां पर गंगा यमुना नाम दो नाड़ियों का है और यह स्थान योगाभ्यास का है। यहां पर नदियों से कुछ प्रयोजन नहीं है और इन शब्दों के साथ विशेषकर इस प्रकार के विशेषण हैं जो नदियों पर कदापि लागू नहीं हो सकते। उन्होंने और बहुत से प्रश्न व्याकरणादि के किये जिनका पूरा-पूरा उत्तर ब्रह्मसमाजियों को मिल गया। (लेखराम पृष्ठ ३२२, ३२६, ३३१)

क्या वेद में इतिहास है ?

(पं० रामरक्खा लाहौर से प्रश्नोत्तर—सन् १८७७)

जब स्वामी जी लाहौर में थे तो एक दिन पंडित रामरक्खा लाहौर निवासी ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि सामवेद में भरद्वाजादि ऋषियों के नाम आये हैं और इससे यह सन्देह होता है कि वेद बहुत पीछे ऋषियों ने बनाये।

इस पर स्वामी जी ने बहुत से मन्त्र पढ़कर सुनाये जिनमें भरद्वाजादि नाम आते थे और कहा कि इन स्थानों पर यह नाम किसी मनुष्य के नहीं हैं प्रत्युत इनके इन स्थानों पर विशेष अर्थ हैं। साथ ही समस्त मन्त्रों का अर्थ सुनाया और कहा कि इस प्रकार की भूलें वेद के वास्तविक अर्थ न जानने के कारण होती हैं। क्योंकि लोग साधारणतया प्रकट अर्थ लेते हैं। यह ऋषियों के नाम नहीं हैं प्रत्युत ऋषियों के नाम इन स्थानों से रखे गये हैं। इससे पण्डित जी का पूरा-पूरा सन्तोष हो गया। (लेखराम पृष्ठ ३३६)

वेदार्थ

(बिशप साहब से लाहौर में प्रश्नोत्तर—सन् १८७७)

पं० बिहारीलाल जी शास्त्री वर्णन करते हैं कि जब स्वामी जी लाहौर में थे तो एक बिशप साहब उस स्थान पर पधारे और आनकर प्रश्न किया कि वेद के ऋषियों को ईश्वर के विषयों में कुछ विदित नहीं था कि वह कौन है और इस मन्त्र का प्रमाण दिया—

"हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः" इत्यादि। राय मूलराज ने स्वामी जी को उसका अंग्रेजी का अर्थ करके समझाया। तब स्वामी जी ने कहा कि इसका यह अर्थ नहीं है। अशुद्ध भाष्य के कारण आपको सन्देह हुआ है। इसका अर्थ यह है कि सर्वव्यापक परमात्मा की हम उपासना करते हैं। फिर बिशप साहब ने कहा कि देखो बाईबिल की महिमा कि उसका उपदेश इतनी दूर फैला हुआ है कि जहां सूर्य्य अस्त नहीं होता।

स्वामी जी ने कहा कि यह भी वेद का कारण है। हम लोग उस धर्म को छोड़ बैठे हैं और आप लोग ब्रह्मचर्य्य, विद्याध्ययन, एक स्त्रीसंग, दूरदेश यात्रा, देशप्रीति आदि रखते हैं इसलिये इतनी उन्नति हो रही है। हमारी जाति के प्रमाद से ही यह आपकी उन्नति है, बाईबिल के कारण से नहीं।

(लेखराम पृ० ३३७)

अश्वमेध तथा गोमेध

(पादरी डाक्टर होपर साहब से लाहौर में प्रश्नोत्तर—मई, १८७७)

जब स्वामी जी लाहौर में डा० रहीम खां साहब की कोठी में ठहरे हुए थे तो वहां स्वामी जी ने यह नियम निश्चित किया कि एक दिन व्याख्यान देते थे और एक दिन शास्त्रार्थ करते थे। सैकड़ों लोग प्रतिदिन उनके व्याख्यान और प्रश्नोत्तर सुनने के लिए जाते थे। प्रत्येक प्रकार के लोग पादरी, पंडित, मौलवी और विद्वान् उनसे शास्त्रार्थ करते थे और अपने प्रत्येक प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर पाते थे।

एक दिन पादरी डा० होपर साहब स्वामी जी के शास्त्रार्थ के दिन नियत समय पर कुर्सी पर स्वामी जी के सम्मुख बैठ गये क्योंकि जो व्यक्ति शास्त्रार्थ करना चाहता था वह दूसरी कुर्सी पर जो स्वामी के सम्मुख मेज की दूसरी ओर रखी होती थी, बैठ जाता था। उपर्युक्त महोदय ने स्वामी जी से दो प्रश्न किये।

पहला प्रश्न—वेदों में अश्वमेध और गोमेधादि का वर्णन है और उस समय में लोग घोड़े और गाय आदि की बलि दिया करते थे। आप इसके विषय में क्या कहते हैं ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि वेदों में अश्वमेध और गोमेध से घोड़े और गाय की बलि देना अभिप्रेत नहीं है प्रत्युत उनके अर्थ ये हैं—

राष्ट्रं वाश्वमेधः॥ शत० १३।१।६।२॥

अन्नं हि गौः॥ श०॥ ४।३१।२२॥

घोड़े, गाय, मनुष्य और पशु मारकर होम करना कहीं नहीं लिखा, केवल वाममर्गियों के ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ लिखा है। यह बात वाममार्गियों ने चलाई और जहां-जहां ऐसा लेख है वहां-वहां उन्हीं वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है। देखो! राजा न्याय से प्रजा का पालन करे यह "अश्वमेध" है। अन्न, इन्द्रियां, अन्तः-करण और पृथिवी आदि को पवित्र करने का नाम "गोमेध' है। जब मनुष्य

मर जाये तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना "नरमेध" कहाता है । इसके अतिरिक्त इनके अर्थ व्याकरण और निरुक्तादि के उद्धरणों से बतलाये जिससे पादरी साहब का सन्तोष हो गया ।

दूसरा प्रश्न यह था कि वेदों में जाति-व्यवहार किस प्रकार है ?

उत्तर स्वामी जी—वेदों में जाति गुणकर्मानुसार है।

पादरी साहब—यदि मेरे गुण कर्म अच्छे हों तो क्या मैं भी ब्राह्मण कहला सकता हूँ ?

स्वामी जी—निस्सन्देह यदि आपके गुण कर्म ब्राह्मण होने के योग्य हैं तो आप भी ब्राह्मण कहला सकते हैं। (लेखराम पृ० ३२४)

हिन्दूधर्म की गम्भीरता

(एच० परकिंस साहब कमिश्नर अमृतसर से वार्तालाप—अगस्त १८७७)

कमिश्नर साहब ने कहा—"हिन्दूधर्म सूत के धागों के समान कच्चा क्यों है ?

स्वामी जी—यह धर्म सूत के धागे के समान कच्चा नहीं है अपितु लोहे से भी अधिक पक्का है। लोहा टूट जाये तो टूट जाये पर यह कभी टूटने में नहीं आता ।

कमिश्नर महोदय—आप कोई उदाहरण दें तो हमको विश्वास आये ।

स्वामी जी—हिन्दूधर्म समुद्र के गुण रखता है जिस प्रकार समुद्र में असंख्य लहरे उठती हैं उसी प्रकार इस धर्म में भी देखिये। (१) ऐसे लोगों का भी मत है जो छान-छान कर पानी पीते हैं। (२) एक मत ऐसे लोगों का भी है जो वाम-मार्गी कहलाते हैं। (३) वह जो कुछ पा जाते हैं उसको पवित्र-अपवित्र और योग्य-अयोग्य का विचार किये बिना खा जाते हैं। (४) एकमत ऐसे लोगों का भी है जो जीवन भर यति रहते हैं अर्थात् न तो किसी स्त्री से विवाह करते हैं और न किसी पर कुदृष्टि रखते हैं। (५) एकमत ऐसे लोगों का भी है जो पराई स्त्रियों से अपना मुँह काला करते हैं।(६) एकमत ऐसे लोगों का भी है जो केवल निराकार परमात्मा को पूजते हैं और उसी का ध्यान करते हैं। (७) फिर एक मत ऐसे लोगों का भी है जो अवतारों की पूजा करते हैं। (८) एक मत ऐसा है कि जो केवल ज्ञानी हैं। (९) एक मत ऐसा है जो केवल ध्यानी हैं। (१०) इसी धर्म में वह लोग भी हैं जो छुआछूत का ऐसा विचार करते हैं कि अन्यमत के लोग तो एक ओर शूद्रों के हाथ तक से पानी नहीं पीते, न खाना खाते हैं। (११) एक मत उन लोगों का भी है जो शूद्रों के हाथ का पानी पीते हैं और इनसे भोजन

बनवाकर खाते हैं। इतना होने पर भी यह सबके सब हिन्दू कहलाते हैं और वास्तव में हैं भी हिन्दू ही। कोई उनको हिन्दूधर्म से निकाल नहीं सकता। इस लिए समझना चाहिए कि यह धर्म अत्यन्त पक्का है, कच्चा नहीं।

परिकिंस साहब—आप किस प्रकार का मत बढ़ाना चाहते हैं ?

स्वामी जी—हम केवल यह चाहते हैं कि सब लोग पवित्र वेद की आज्ञा का पालन करें और केवल निराकार अद्वितीय परमेश्वर की पूजा और उपासना करें। शुभ गुणों को ग्रहण करें और अशुभों को त्याग दें।

मूर्त्तिपूजा

(पंडित लक्ष्मीधर जी तथा प० दौलतराम जी दीनानगर निवासी से गुरुदासपुर में शास्त्रार्थ—अगस्त, १८७७)

१८ अगस्त, सन् १८७७ से २६ अगस्त, सन् १८७७ तक स्वामी जी गुरुदास-पुर रहे। मियां हरिसिंह और मियाँ शेरसिंह जी ने जो दोनों मूर्तिपूजक थे, पण्डित लक्ष्मीधर जी और पंडित दौलतराम जी दीनानगर निवासी को स्वामी जी महाराज के साथ शास्त्रार्थ करने को बुलवाया। जिस दिन ये पण्डित लोग आये उस दिन स्वामी जी का व्याख्यान शिवपुराण के खण्डन पर था। स्वामी जी ने वह कहानी सुनाई कि लिंग महादेव का बढ़ा और ब्रह्मा विष्णु सुअर और हंस बनकर उसके नापने के लिये गये, आदि आदि।

दोनों पण्डितों और दोनों मियां सज्जनों ने कुछ सभ्यता विरुद्ध शब्द कहने आरम्भ किये कि झूठ बकता है। तब डाक्टर बिहारी लाल जी ने सभा के नियमों के अनुसार निवेदन किया कि प्रथम सब कुछ सुन लेना चाहिये तत्पश्चात् आक्षेप करने के लिये उद्यत रहना चाहिये। परन्तु यह कहां सम्भव था। अन्त में जब स्वामी जी ने देखा कि पण्डित लोग बोलने से नहीं रुकते तो कहा कि अब मैं मौन हो जाता हूँ, पण्डितों में से जिसे कोई शंका करनी हो करे। चूँकि भीड़ बहुत थी और लोगों को उत्सुकता थी कि दोनों पक्षों को देखें। इस-लिये श्रोताओं की प्रार्थना पर बाबू बिहारीलाल जी ने कहा कि पण्डितों में से जो शास्त्रार्थ करना चाहते हैं वे मैदान में कुर्सी पर पधारें और स्वयं एक कुर्सी वहां बिछवा दी। चूँकि उनमें से कोई एक ऐसा विद्वान् न था और न उनमें स्वामी जी की विद्या और तेज का सामना करने की शक्ति थी। इसलिये मियां सज्जनों और पण्डित लोगों की यह इच्छा थी कि सब मिलकर प्रश्नोत्तर करें और इस तर्क वितर्क में ये लोग भांति-भांति की बोलियां बोलते थे जिससे कोलाहल होता था। इसलिये स्वामी जी ने कहा कि जो एक पण्डित चाहे सामने

बैठकर उत्तर प्रश्न करे। यद्यपि यह सुझाव पूर्णतया बुद्धि के अनुकूल था परंतु विरोधी पक्ष के लिये लाभदायक न था। मियां हरिसिंह ने कहा कि अकेला कोई पण्डित आपसे शास्त्रार्थ नहीं कर सकता, दो या अधिक मिलकर करेंगे। स्वामी जी ने कहा कि अच्छा जिसको इच्छा हो यहां आनकर उसको बारी-बारी बतलाता रहे। इस पर सहसा मियां हरिसिंह के मुख से निकला कि यह वन्दर किल्ली कौन खेल सकता है।

फिर जब डाक्टर साहब ने अनुरोध किया कि शास्त्रार्थ का नियम है कि दोनों सम्मुख बैठकर विचार करें, अवश्य पण्डित जी को सामने बैठकर शास्त्रार्थ करना चाहिये। तब मियां साहब के मुख से निकला "क्या कंजरियों (वेश्याओं) का नाच है जो बीच में आने की आवश्यकता है।" इस असभ्यतापूर्ण वाक्य की उपेक्षा को गई और जिस प्रकार वे चाहते थे वैसे ही बातचीत आरम्भ हुई।

मूर्तिपूजा पर बात चली। पण्डितों ने यह मन्त्र 'गणानान्त्वा" इत्यादि पढ़ा कि इससे गणेश जी की मूर्ति सिद्ध होती है। स्वामी जी ने इस पर किसी भाष्य का प्रमाण मांगा। उन्होंने महीधर की चर्चा की। स्वामी जी ने झट महीधर का भाष्य निकाल कर आगे रखा और उसका अश्लील अर्थ लोगों को सुनाया कि न तो इससे मूर्तिपूजा सिद्ध होती है और न गणेश-पूजा। प्रत्युत यह तो अत्यन्त अश्लील भाष्य है और साथ ही सनातन निरुक्तादि ग्रन्थों से उसका श्रेष्ठ अर्थ भी बतलाया कि इसका मूर्तिपूजा से कोई सम्बन्ध नहीं। जब मियां साहब को यह बात बुरी लगी तब कहा कि अंग्रेजी राज्य है अन्यथा यदि रियासत होती तो कोई आपका शिर काट डालता। स्वामी जी ने इसकी तनिक भी पर्वाह न की और निरन्तर खण्डन करते रहे। जब मियां सज्जनों से और कुछ न हो सका तो यह कहा कि यहां पर मैजिस्ट्रेट और पुलिस दोनों उपस्थित हैं, इसका भी ध्यान रखना। उनकी बात डाक्टर बिहारीलाल जी को बहुत बुरी लगी जिस पर उन्होंने मियां साहब को भली-भांति मुंहतोड़ उत्तर दिया और डाक्टर साहब और मियाँ साहब की परस्पर विरोधात्मक बातचीत होकर सभा विसर्जित हुई।

(लेखराम पृ० ३५२ से ३५३)

वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

(ला० हरनारायण सुपुत्र बाबू हेमराज जी से जालन्धर में प्रश्नोत्तर)

सितम्बर, १८७७

स्वामी जी १३ सितम्बर, सन् १८७७ बृहस्पतिवार तदनुसार भादों सुदि ६, संवत् १९३४ को अमृतसर से जालन्धर पहुँचे और १५ अक्तूबर, सन् १८७७

तक वहां रहे। वहां एक दिन ला० हरनारायण सुपुत्र बाबू हेमराज जी ने वेदों के विषय में प्रश्न किया कि आप ईश्वर को निराकार मानते हैं परन्तु वेद तो मुख और कलम और दवात और वाणी के विना रचे नहीं जाते, ईश्वर ने कैसे बनाये ?

स्वामी जी ने कहा कि तुम अपने चित्त में कुछ पढ़ो, उसने पढ़ा। स्वामी जी ने कहा कि तुम तो पढ़ सकते हो परन्तु ईश्वर ऐसा भी नहीं कर सकता। ईश्वर ने तुमको और सब विश्व को रचा है। (लेखराम पृ० ३५७)

पुनर्जन्म एवं चमत्कार

(मौलवी अहमद हसन साहब से जालन्धर में शास्त्रार्थ—२४ सितम्बर, १८७७)

भूमिका

फकीर मौहम्मद मिर्जा मवाहिद जालन्धर निवासी पाठकों को इस ट्रेक्ट (पुस्तिका) के प्रकाशित होने के कारणों से परिचित करता है कि मिति १३ सितम्बर, सन् १८७७ को स्वामी दयानन्द सरस्वती जी जालन्धर में भी भ्रमण करते हुए पधारे और परोपकारमूर्ति श्री सर्दार विक्रमसिंह जी अहलूवालिया की कोठी में विराजमान हुए। वहां वे वेद के अनुसार जिसको वे ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, कथा करने लगे। मैंने इच्छा प्रकट की कि सर्दार साहब तथा मौलवी अहमद हुसैन साहब की बातचीत भी किसी बौद्धिक विषय पर होनी चाहिए। माननीय सर्दार साहब ने इसको पसन्द किया और स्वामी जी ने भी स्वीकार करके २४ सितम्बर के प्रातः सात बजे का समय एतदर्थ निश्चित कर दिया। मौलवी साहब नियत समय पर हिन्दू तथा मुसलमान नगर-निवासियों के साथ वहाँ आ गये। मौलवी साहब की इच्छानुसार पुनर्जन्म का विषय तथा स्वामी जी की इच्छानुसार चमत्कार का विषय शास्त्रार्थ के लिए नियत हुआ अर्थात् यह निश्चय पाया कि स्वामी जी पुनर्जन्म को सिद्ध करेंगे तथा मौलवी साहब उसका खंडन करेंगे तथा मौलवी साहब अहले अल्लाह (ईश्वर भक्तों) के चमत्कार को सिद्ध करेंगे तथा स्वामी जी उसका खण्डन करेंगे। बातचीत प्रारम्भ होने से पूर्व यह निश्चित हुआ कि दोनों ओर से कोई व्यक्ति सभ्यताविरुद्ध बात न करेगा और स्वामी जी की ओर से यह घोषणा भी की गई कि कोई सज्जन इस शास्त्रार्थ के समाप्त होने पर किसी की हार-जीत न माने यदि मानेगा तो पक्षपाती और असभ्य समझा जायेगा क्योंकि ये समस्याएँ ऐसी नहीं हैं कि दो तीन शास्त्रार्थों में इनका निर्णय होजाये अथवा किसी की हार-जीत समझी जाये। परन्तु जब यह शास्त्रार्थ पुस्तक रूप में प्रकाशित होगा तो स्वयं हाथ कंगन को आरसी के सदृश होगा और बुद्धिमान् इसको

गधे और कुत्ते के शरीर में मनुष्य का जीव जाने से मौलवी साहब कहते हैं कि बड़ी हानि होती है क्योंकि सब कमाई की हुई चली जाती है यदि मौलवी साहब ऐसा मानते हैं तो मौलवी साहब को कभी सोना न चाहिए क्योंकि निद्रा में जाग्रत की कमाई सब भूल जाती है। यदि मौलवी साहब कहें कि फिर जागने से वह ज्ञान आ जाता है तो कुत्ते, गधे के शरीर में भी आ जायेगा और ज्ञान फिर प्राप्त कर सकता है जैसे कि मनुष्य निद्रा से जागकर करता है। इसलिये मैं जानता हूँ कि मौलवी साहब के भाषण और मेरे भाषण को बुद्धिमान् लोग स्वयं देखलेंगे और एक जन्म इन बातों से सिद्ध नहीं होता परन्तु पुनर्जन्म सिद्ध है।

हस्ताक्षर अंग्रेजी

ला० हमीरचन्द

हमारे समक्ष जो बातचीत के विषय निश्चित हुए वे वास्तव में यही थे जो इस भूमिका में लिखे हैं। **हस्ताक्षर—मौहम्मद हुसैन महसूद**

(दिग्विजयार्क पृ० ३१ से ३३, लेखराम पृ० ३५७ तथा ३६३ से ७००)

वेद ईश्वरीय ज्ञान है

(लाहौर में पण्डित व लाट पादरी से प्रश्नोत्तर—अक्टूबर, १८७७)

एक दिन एक पण्डित ने महाराज से प्रश्न किया कि सामवेद में भरद्वाज आदि ऋषियों के नाम आये हैं इससे संदेह होता है कि वेद ऋषि-कृत हैं। महाराज ने उत्तर दिया कि उन मन्त्रों में यह नाम ऋषियों के नहीं हैं, प्रत्युत उनके विशेष अर्थ हैं। पीछे से ऋषियों के नाम वेद के इन शब्दों से रख लिये गये हैं और कई एक मन्त्रों का जिनमें उक्त शब्द आये थे अर्थ करके सुनाया।

एक दिन एक विशपलाट (पादरी) महाराज से भेंट करने आये और वार्तालाप में यह प्रसंग उठाया कि वेद-ऋषियों को ईश्वर के विषय में कुछ ज्ञान न था और हिरण्यगर्भ सूक्त की ओर संकेत दिया कि उसमें यह आता है कि हम किस देव की उपासना करें (कस्मै देवाय हविषा विधेम)। राय मूलराज ने उक्त सूक्त का अंग्रेजी अनुवाद महाराज को सुनाया तो उन्होंने विशप साहब से कहा कि आपको अशुद्ध अनुवाद के कारण भ्रम हुआ है। इसके अर्थ यह नहीं कि हम किस देव की उपासना करें, प्रत्युत यह है कि हम सर्वव्यापक, सुखस्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं। फिर विशप साहब बोले कि देखो बायबल का प्रताप [illegible] सारे संसार में इतने विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है कि उसमें सूर्य अस्त नहीं होता। महाराज ने कहा कि यह भी वेद का ही प्रताप है। हम लोग वैदिक धर्म को छोड़ बैठे हैं और आप लोगों में वेदोपदिष्ट गुण हैं। यथा ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययन

एक-पत्नीव्रत, दूरदेश- यात्रा, स्वदेशप्रीति आदि। इसीसे आपकी इतनी उन्नति हो रही है, बाइबल के कारण से नहीं।

(देवेन्द्रनाथ २। ७१ लेखराम पृ० ३३६, ३३७)

ईश्वर की सर्वव्यापकता

(पं० **कृपाराम मैगजीन क्लर्क फिरोजपुर से प्रश्नोत्तर** अक्टूबर या नवम्बर, १८७७)

स्वामी जी अक्टूबर, सन् १८७७ से ४ नवम्बर, सन् १८७७ तक फिरोजपुर छावनी में ठहरे। वहां एक दिन पंडित कृपाराम वर्तमान क्लर्क मैगजीन फिरोजपुर ने प्रश्न करना चाहा और जाते ही कहा कि आप तो कुर्सी पर बैठे हैं, मैं खड़ा हूँ। मेरे और आपके प्रश्नोत्तर किस प्रकार हो सकते हैं। स्वामी जी ने उसके लिये कुर्सी मंगाई। जब कुर्सी आने में विलंब हुआ तो स्वामी जी ने कहा कि आप कुर्सी के बिना भी बोल सकते हैं और अगर दुःख है कि मैं क्यों बैठा हूँ तो मैं भी नीचे बैठ जाता हूँ। इतने में कुर्सी आ गई और बैठ गये। उन्होंने प्रश्न किया कि खुदा महदूद है या गैर महदूद है?

स्वामी जी ने कहा कि मैं अर्बी नहीं समझता, भाषा में कहो कि इसका तात्पर्य क्या है। क्या एकदेशी और सर्वव्यापक से अभिप्राय है?

उसने कहा कि हां।

स्वामी जी ने कहा कि सर्वव्यापक है।

कृपाराम जी ने अपनी घड़ी सहसा मेज पर रख दी कि बतलाओ इसमें कहां है?

स्वामी जी ने आकाश का उदाहरण देकर कहा कि आकाश सर्वत्र समाया है, सब वस्तुएँ आकाश के अन्दर हैं। मेरा यह सोटा भी (अपना सोटा खड़ा करके) आकाश के अन्दर है। जैसे यह आकाश के बाहर नहीं हो सकता, इसी प्रकार आपकी घड़ी भी परमेश्वर की व्यापकता से पृथक् नहीं। इस पर उन्होंने अपना संतोष तो प्रकट न किया, केवल यह कहा कि बस तुम्हें गपोड़े हांकने आते हैं।

परन्तु विचार करने के पश्चात् उत्तर को सत्य समझकर सच्चे हृदय से आर्यसमाज फिरोजपुर के सभासद् हो गये और पूरी निष्ठा से स्वामी जी का सम्मान करने लगे। (लेखराम पृष्ठ ३५६)

लूत पैगम्बर का अनाचार

(पादरी और मौलवी से प्रश्नोत्तर रावलपिण्डी में—नवम्बर, १८७७)

(७ नवम्बर, सन् १८७७ से २९ दिसंबर, सन् १८७७ तक)

स्वामी जी ७ नवम्बर, सन् १८७७, बुधवार तदनुसार कार्तिक सुदि २, संवत् १९३४ को रावलपिंडी में पधारे और सेठ जामसन जी व्यापारी की कोठी पर ठहरे। इसी कोठी में एक दिन स्वामी जी ने व्याख्यान के पश्चात् कुछ विशेष व्यक्तियों से बातचीत करते हुए कहा कि हिन्दुओं की दशा पर अत्यन्त खेद है, वह अन्य मतों की पुस्तक नहीं देखते और मेलों में जब कभी कोई पादरी और मौलवी उनको कहता है कि ब्रह्मा जी ने अपनी पुत्री से व्यभिचार किया तो झट स्वीकार कर लेते हैं। ब्रह्मा जी की बात तो किसी विश्वसनीय ग्रन्थों में नहीं है परन्तु बाईबिल में लूत पैगम्बर का अपनी बेटियों से व्यभिचार करने का वर्णन है। वह यदि बतलावें तो पादरी तथा मुसलमान कदापि सामने आकर बात न कर सकें। उस समय एक पादरी तथा एक मौलवी मिशन स्कूल के बैठे हुए थे। उन्होंने घर में आकर सम्मति की कि यह बात स्वामी जी ने झूठ कही है, कल उन पर आक्षेप करेंगे। वे लोग दूसरे दिन आये और आक्षेप किया, पुस्तकें साथ लाये। व्याख्यान की समाप्ति पर जब स्वामी जी बैठे तब उन्होंने कहा कि कल जो आपने कहा था कि लूत ने अपनी लड़कियों से व्यभिचार किया है यह बात झूठ है। स्वामी जी ने कहा कि हमको ज्ञात था कि तुमको इस बात की लज्जा आयेगी। वे लोग पुस्तकें लेकर पास बैठ गये। स्वामी जी ने कहा कि यह तुम्हारी लड़कपन की बात है तुमको प्रथम यह चाहिये था कि घर में दीपक जलाकर अपनी चारपाई की दशा का ज्ञान प्राप्त करलेते ताकि तुमको इस सभा में लज्जित न होना पड़ता परन्तु वह न समझे। तब स्वामी जी ने कहा कि अरे तुलसिया! हमारी बाईबिल लाओ। वह लाया और स्वामी जी ने निकालकर बतलाया (बाईबिल उत्पति पर्व, आयत ३० से ३८ तक) जिसमें स्पष्ट रूप से लिखा है। फिर वह अत्यन्त लज्जित हुए परन्तु साथ ही यह कहा कि शराब के नशे में था। लाला शिवदयाल जी ने कहा कि चाहे कुछ भी हो परन्तु उसको यह विदित था कि मेरी स्त्री मर चुकी है और मैं चिरकाल से बिना स्त्री के हूँ और ये मेरी लड़कियां हैं। पाप से किसी दशा में भी उसका छुटकारा नहीं हो सकता। जिस पर वे लज्जित होकर चले गये और कहा कि निस्सन्देह यह हमारा अपराध था, यदि घर में देखलेते तो आपको कष्ट न देते।

(लेखराम पृष्ठ ३६१-३६२)

नव्य न्याय और आर्ष-ग्रन्थ

(गुजरात में पण्डित होशनाकराय से प्रश्नोत्तर—जनवरी, १८७८)

जब गोस्वामी शिवदास वेद में मनगढ़न्त श्रुति न दिखा सके तब पण्डित होशनाकराय ने कहा, मैं आपसे न्याय में प्रश्न करूँगा। पण्डित नंदलाल मध्यस्थ बने। व्याप्तिवाद पर प्रश्न हुआ। महाराज ने महाभाष्य के अनुसार व्याप्ति के लक्षण किये और कहा कि हम आर्ष ग्रन्थों को मानते हैं, आपके लक्षण नहीं मानते, हमारे किये हुए लक्षण में अशुद्धियां बताइये। परन्तु वे न बता सके और पण्डित नन्दलाल को भी कहना पड़ा कि स्वामी जी ठीक कहते हैं।

(देवेन्द्रनाथ २। ८३. लेखराम पृ० ३७०)

आप ज्ञानी हैं वा अज्ञानी ?

(गुजरात के कुछ हिन्दुओं के साथ प्रश्नोत्तर—जनवरी, १८७८)

बाबू मंगोमल पोस्टमास्टर लाहौर वर्णन करते हैं कि स्वामी जी जिन दिनों गुजरात में थे तो वहां के कुछ हिन्दुओं ने परस्पर सम्मति करके स्वामी जी से यह प्रश्न किया कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? (अर्थात् यदि ज्ञानी कहेंगे तो हम बोलेंगे कि आप अहंकार करते हैं संतों को अहंकार नहीं चाहिये और अहंकारी का तप नष्ट हो जाता है और यदि कहेंगे कि अज्ञानी है तो हम कहेंगे कि जब आप स्वयं ही अज्ञानी हैं तो हमको क्या सिखलावेंगे।)

स्वामी जी ने ऐसा उत्तर दिया कि वे सब के सब चकित रह गये। कहाकि मैं कई बातों में अज्ञानी हूँ और कई बातों में ज्ञानी, उदाहरणार्थ दुकानदारी, व्यापार, अंग्रेजी, फार्सी से अज्ञानी हूँ और संस्कृत और धर्म की बातों से ज्ञानी हूँ। इस उत्तर को सुनकर वे अत्यन्त लज्जित हुए और निरुत्तर होकर चले गये।

(लेखराम पृष्ठ ३७३)

वेद में मुर्दे दफनाना नहीं लिखा

(मिस्टर बुचानीन साहब से प्रश्नोत्तर-गुजरात (पंजाब) में—जनवरी, १८७८)

स्वामी जी १३ जनवरी, सन् १८७८ को रावलपिण्डी और जेहलम में आर्यसमाज की स्थापना करने के पश्चात् गुजरात पधारे। जिस मकान में अब गवर्नमेंट स्कूल का बोर्डिंग हाउस है, उसमें स्वामी जी के व्याख्यानों का आयोजन किया गया। मिस्टर बोकनीन साहब हेडमास्टर गवर्नमेण्ट हाईस्कूल से आज्ञा लेकर व्याख्यान आरम्भ हुए। एक दिन व्याख्यान की समाप्ति पर बोक-

नीन साहब उठ खड़े हुए और प्रश्न किया ओ बाबा, ओ बाबा, तू इन बेचारे अन्धों की जो डन्गूरी छीनता है उसके बदले इनको क्या देता है। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मैं वेद देता हूँ और योगाभ्यास। बोकनीन साहब ने कहा कि मेरे आप पर प्रश्न हैं। स्वामी जी ने कहा कि कीजिये।

बोकनीन—वेदों में लिखा है कि पहले इस देश में मुर्दे दफनाये जाते थे तुम कैसे जलाने को कहते हो ?

स्वामी जी ने कहा कि मन्त्र सुनाओ।

नन्दलाल ने बोकनीन साहब की ओर से मन्त्र सुनाया परन्तु अब वह मंत्र स्मरण नहीं रहा जिसका अर्थ यह था कि 'हे पृथ्वी तू इसको अपनी दोनों भुजाओं में लेले'' इत्यादि।

स्वामी जी ठहर गये और कहा कि अब चूँकि समय व्यतीत हो चुका है कल तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दिया जावेगा।

दूसरे दिन उन्होंने एक और मन्त्र सुनाया और उसके द्वारा इस मन्त्र का अर्थ किया कि इसका अभिप्राय मुर्दा गाड़ने से नहीं है प्रत्युत यह है कि पृथ्वी खोद कर मुर्दे जलाये जाते थे। भूमि के दोनों किनारे उसके दो बाहु कल्पित किये गये हैं।

बोकनीन साहब चुप कर गये। (लेखराम पृ० ३७१)

ईश्वर और जीव का भेद

(पादरी सोलफीट साहब से गुजरावालां में शास्त्रार्थ—
१८ से २० फरवरी, १८७८)

१९ फरवरी, सन् १८७८ तदनुसार फागुन वदि २, संवत् १९३५, मंगलवार को सायंकाल ४ बजे स्वामी जी महाराज गिर्जाघर में शास्त्रार्थ के लिये पधारे।

निम्नलिखित पादरी सज्जन उपस्थित थे—

पादरी साहब मिशनरी सियालकोट, पादरी मेकी साहब अमरीकन, पादरी [illegible] साहब देशी पादरी जो लाशा के नाम से प्रसिद्ध थे।

इनके अतिरिक्त मिस्टर मोहनवीर साहब गोरखा ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर, मिस्टर ह्यूसन साहब असिस्टैण्ट कमिश्नर, वाकर साहब असिस्टैण्ट कमिश्नर, डिप्टी गोपालदास साहब ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर, डिप्टी बर्कत-अली साहब ऐक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर आदि सज्जन तथा नगर के सारे सम्मा-

नित रईस भी वहां पधारे हुए थे। डिप्टी गोपालदास जी मध्यस्थ बनाये गये थे। श्रोताओं के लिये टिकिट लगाये गये थे। गिर्जाघर का भीतर बाहर सब मनुष्यों से भरा हुआ था। डेढ़ दो हजार के लगभग मनुष्य होंगे। शास्त्रार्थ करने वाले पादरी स्वीफ्ट साहब थे।

पादरी स्वीफ्ट साहब ने शंका उपस्थित की कि यदि जीव भी अनादि माना जावे और ईश्वर भी तो वे दोनों समान हो गये। दो दिन तक प्रश्नोत्तर होते रहे।

स्वामी जी ने इस बात का विद्या के प्रमाणों और बुद्धिपूर्ण युक्तियों द्वारा बड़ी उत्तमता से खण्डन किया कि वे दोनों समान नहीं होते प्रत्युत स्वामी सेवक होते हैं। ४ बजे से ८ बजे तक शास्त्रार्थ होता रहा।

शास्त्रार्थ लिखित था अर्थात् दोनों ओर के प्रश्नोत्तर लिखने वाला गंगाराम चोपड़ा था परन्तु वे लिखित पत्र कहीं खो गये, अब नहीं मिलते हैं।

भाई हजूरासिंह जी कहते हैं कि शास्त्रार्थ के पश्चात् डिप्टी गोपालदास जी ने पादरी साहब को कहा कि स्वामी जी आपके प्रश्नों के पर्याप्त उत्तर दे चुके हैं, आपका हठ है जो नहीं मानते। और लोगों को भी संभवतः उस समय विश्वास हो गया था कि स्वामी जी सच्चाई पर हैं और पादरी साहब भूल पर।

यह बात भी जितलाने योग्य है कि शास्त्रार्थ के समय स्वामी जी ने इन्जील की समस्याओं और मसीह की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध में भी निरन्तर बहुत से आक्षेप किये और इससे ईसाई मत की कलई खुलती रही कि ईसाई मत कितना निकृष्ट और हीन है परन्तु पादरी साहब रह गये प्रश्नों के उत्तर से बार-बार बचना और पूर्णतया उपेक्षा करना ही श्रेष्ठ समझते रहे।

गिर्जाघर चूंकि एक तंग स्थान था जहां से इस शास्त्रार्थ सुनने के सैकड़ों इच्छुक शास्त्रार्थ के लाभ से वंचित रहकर घर को लौट जाते थे। उनकी भीड़ देखकर उनको निराश लौटाने के लिए गिर्जाघर के समस्त द्वार बन्द कर दिये जाते थे और गिर्जाघर के भीतर मकान की तंगी और श्रोताओं की अधिकता के कारण लोगों के दम घुटने लग जाते थे। इसलिये लोगों की इच्छा यह थी कि यह शास्त्रार्थ किसी खुले स्थान पर हो, इसलिए दूसरे दिन शास्त्रार्थ का समय होने के पश्चात् स्वामी जी ने पादरी लोगों को सम्बोधन करके कहा कि स्थान अत्यन्त संकुचित है, लोगों का एक बड़ा उत्सुक भाग यहां से निराश जाता है और जो लोग भीतर आकर बैठते हैं वे भी स्थान के संकुचित होने के कारण बहुत कष्ट पाते हैं और इसके अतिरिक्त यह स्थान एक पक्ष का धार्मिक-गृह भी है। इस

लिए कोई ऐसा स्थान नियत होना चाहिए जो इन दोषों से रहित हो। पादरी लोगों ने उस समय तो कोई ठीक उत्तर न दिया परन्तु अगले दिन १२ बजे के लगभग जब स्वामी जी वेदभाष्य के काम में पूर्णतया संलग्न थे और उनको पहले से बिल्कुल कोई सूचना नहीं थी और न उनसे कोई सम्मति ली गई थी कि शास्त्रार्थ १२ बजे दिन के होगा, स्वयमेव कुछ क्रिश्चन भाइयों को गिर्जाघर में बुलाकर बिठा लिया और स्वामी जी की ओर मनुष्य भेजा कि वे इस समय गिर्जाघर आ जायें। स्वामी जी उसकी बात को सुनकर बहुत चकित हुए, और कहा कि जब चार बजे शाम का समय दोनों पक्षों की सम्मति से निश्चित हो चुका है और लोगों को भी केवल उसी समय की सूचना है और इस १२ बजे के समय के लिए न तो कोई परस्पर सम्मति हुई है और न पहले से मुझको सूचना दी गई है और न लोगों को उसकी सूचना है तो ज्ञात नहीं कि आपने स्वयमेव १२ बजे दिन का समय किस प्रकार निश्चित कर लिया है। और हमने कल कहा था कि गिर्जाघर पर्याप्त रूप से खुला स्थान नहीं है तो क्या उसका यही उत्तर है कि स्थान अच्छा प्रबन्ध करने की जगह अब समय भी स्वयमेव ऐसा निश्चित करलेवें जिसको दूसरे पक्ष ने आरम्भ से ही अस्वीकार कर रखा है। इसलिये ऐसी तुच्छ और गर्वपूर्ण कार्यवाही के अनुसार चलना मेरे लिए आवश्यक नहीं कि मैं वेदभाष्य जैसे उत्तम और विशेष कार्य से जिसको कि मैं अब यहां पर बैठा करता हूँ छोड़कर पादरी लोगों के गिर्जाघर में उपस्थित होने के लिये विवश हूँ। पादरी लोग यदि स्थान का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं कर सकते तो वह नियत समय पर (जो कि दोनों की सम्मति से निश्चित हुआ है और जिसकी शास्त्रार्थ के इच्छुकों को पहले से सूचना है) तैयार रहें। चार बजे शाम के लिये प्रबन्ध का भार मैं स्वयं लेता हूँ। यह कहकर क्रिश्चन दूत को स्वामी जी ने विदा किया और ला० गोपालदास जी ने ऐसा ही उन्हें उत्तर दिया कि इस समय नियमविरुद्ध मैं उपस्थित नहीं हो सकता।

नगर का तो मनुष्य इस दिन दोपहर को गिर्जा में न गया परन्तु पादरियों ने कुछ क्रिश्चन और कुछ लड़के स्कूल के कुर्सियों पर विठला कर उनको सुनाया कि चूंकि स्वामी जी अब १२ बजे नहीं आते हैं इसलिए वह हारे हुए समझे जावें। यह कहकर सभा विसर्जित हुई।

स्वामी जी पादरियों के इस घृणित कार्य्य पर बहुत क्रुद्ध हुए और नगर के सम्मानित व्यक्तियों ने भी उनके असभ्यतापूर्ण प्रदर्शन की बहुत हंसी की। और स्वामी जी की प्रार्थना पर नगर के कुछ गण्यमान्य सज्जनों ने ४ बजे शाम को समाधि के समीप एक खुले स्थान पर दरियां, मेज, कुर्सी आदि सब सामग्री इकट्ठी

करके शास्त्रार्थ का प्रबन्ध करदिया। और चूंकि वह स्थान गिर्जाघर के समीप था (जहां पहले दो दिन शास्त्रार्थ हुआ था) इसलिये जो लोग नित्य की भांति शास्त्रार्थ सुनने के लिये आये वे वहां पहुँच गये जहाँ शास्त्रार्थ का आयोजन था। सारांश यह कि लोग पंक्ति बांध-बांध कर आनेलगे और स्थान के खुला होने के कारण अत्यन्त प्रसन्न थे। पादरी लोगों को कई बार एक बार उनके दूत के मुख से और दूसरी बार एक और सम्मानित व्यक्ति द्वारा सूचना समय से पूर्व ही दी गई परन्तु वे अपने घर से बाहर न निकले। पहले स्मरण दिलाने के अतिरिक्त नियत समय पर भी स्मरण दिलाया गया परन्तु उनका वहां आना अत्यन्त कठिन हो गया। इसलिये विवश होकर नियत समय के लगभग पौन घण्टा पश्चात् स्वामी जी ने व्याख्यान देना आरम्भ किया। उस दिन व्याख्यान भी इंजील की शिक्षा पर था जिसमें ईसाई मत का अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण और रोचक ढंग पर खंडन किया। आज उपस्थिति सब दिनों से अधिक थी और लोग पादरियों के मत की वास्तविकता सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

इसके पश्चात् लगभग दस बारह दिन तक स्वामी जी गुजरांवाला में रहे परन्तु किसी पादरी को भी सामने आने का साहस न हुआ। व्याख्यान के पश्चात् कुछ लोग किसी-किसी विषय पर अपनी शंकाएं प्रकट किया करते थे जिनका उत्तर स्वामी जी अत्यन्त सरल तथा प्रीतिपूर्ण शब्दों में प्रबल तथा सन्तोषजनक युक्तियों के साथ दिया करते थे। जिनको सुनकर वे सब बड़ी शान्ति के साथ अपने-अपने घर जाते थे। (लेखराम पृ० ३७७ से ३७६)

एक साथ खानपान

(सेठ हर्मुज जी पारसी से मुलतान में प्रश्नोत्तर—मार्च, १८७८)

स्वामी जी जब मुल्तान में ठहरे हुए थे तो वहां उन्होंने एक व्याख्यान स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तों पर दिया था, जिसकी समाप्ति पर हर्मुज जी साहब पारसी ने बेगी के बाग में स्वामी जी से प्रश्न किया कि जब आप यह सिद्ध करते हैं कि हम और आप एक जाति से हैं तो फिर आप हमसे खानपान का व्यवहार क्यों नहीं करते ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि आप लोगों का मुसलमान आदि जातियों से व्यवहार होने से हम लोग आप से ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते परन्तु यदि आप लोग कुछ काल तक आर्य्य लोगों से मिलते रहें तो यह बात दूर हो जावेगी। जहां तक एक स्थान पर परस्पर झूठा खाने की बात है इसके विषय में आप ही कहें कि आपस में रल मिलकर खाने से क्या लाभ है और न खाने में क्या दोष ?

सेठ हर्मज जी ने कहा कि रल मिल कर खाने से प्रीति और स्नेह अधिक होता है और परहेज करने से परस्पर विरोध उत्पन्न होता है।

स्वामी जी ने कहा कि आर्य्यावर्त की नीति के अनुसार रल मिलकर खाना निषिद्ध है क्योंकि बहुत से संक्रामक रोग हैं जो एक दूसरे के साथ झूठा खाने से या पानी पीने से हुक्का पीने से या पास बैठने से तत्काल दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। (पंडित जसवन्त राय साहब असिस्टेण्ट सर्जन ने उस समय इन रोगों की व्याख्या कर दी)। दूसरे यदि इकट्ठा खाने से प्रीति और स्नेह अधिक होता तो अमीर काबुल शाहे रोम (रोम का राजा) को शहंशाहे रूस (रूस का सम्राट्) के आक्रमण के समय सहायता देने से क्यों इन्कार करते? इससे प्रकट है कि प्रीति और स्नेह अधिक करने के और साधन हैं न कि रल मिल कर खाना। यदि इकट्ठा खाने से प्रीति होती तो मुसलमान भाई एक दूसरे के साथ कभी झगड़ा न करते जबकि अवस्था यह है कि वे एक दूसरे के प्राणों के शत्रु बन रहे हैं।

चोटी के लिये कहा कि हिमालयादि शीतप्रधान देशों में पूरे बाल रखने चाहियें। पंजाब में केवल शिखा और जो अधिक उष्ण देश हो तो वहाँ बाल पूर्णरूप से मुंडवा देवें तो कोई हानि नहीं। (लेखराम पृ० ३८२,३६०)

मांस-भक्षण निषेध

(पंडित कृष्णनारायण से मुलतान में प्रश्नोत्तर—मार्च, १८७८)

पंडित कृष्णनारायण वर्णन करते हैं कि जब स्वामी जी मुलतान में थे तो एक बार उनसे मांसभक्षण पर बातचीत हुई। उन्होंने कहा कि मांस खाना वेद के विरुद्ध है। उसका खाना अनुचित है। मैंने कहा कि उसके खाने में कोई हानि प्रतीत नहीं होती। उन्होंने उत्तर दिया कि जो परमात्मा की आज्ञा है उसके अनुसार करना लाभदायक होता है। परमात्मा की समस्त आज्ञाएं हमारे लिए लाभदायक हैं। आज्ञा के भंग करने में वह लाभ तो दूर रहा प्रत्युत हानि उठानी पड़ती है।

मैंने फिर निवेदन किया कि मांस खाने से कोई हानि नहीं होती है और न हमको अब तक हानि प्रतीत हुई है।

उन्होंने कहा कि परमात्मा की आज्ञाएँ दो प्रकार की हैं। एक वे जो शरीर के साथ सम्बन्ध रखती हैं, दूसरी वे जिनका सम्बन्ध आत्मा के साथ है। यदि किसी आज्ञा के विरुद्ध जो शरीर से सम्बन्ध रखती है किया जावे तो कष्ट होगा और स्वास्थ्य में अन्तर आवेगा। इसी प्रकार यदि कोई आज्ञा जिसके पालन से आत्मिक शान्ति प्राप्त होती है, न मानी जावे तो आत्मा को वे बातें प्राप्त नहीं

होती हैं जो उसको होनी चाहिए। मांस खाना आत्मा के लिए हानिकर है जो सांसारिक मनुष्यों को प्रतीत नहीं होता है। मांस के खाने वाले को योगविद्या नहीं आती है और न कोई सिद्धि उसको प्राप्त होती है अर्थात् वह सत्य के विवेक से वंचित रहता है। वेदों का तात्पर्य यही है कि प्रत्येक व्यक्ति को सत्य का विवेक हो इसलिए उसमें निषेध किया गया है। यदि तुमको विश्वास नहीं आता तो परीक्षा करके देख लो। (लेखराम पृष्ठ ३८६)

मुक्ति-विषय

(पण्डित ठाकुरदत्त जी रईस मुलतान से वार्तालाप—मार्च, १८७८ ई०)

पंडित ठाकुरदत्त जी रईस मुलतान ने वर्णन किया। मैं और पंडित बारातीलाल डेरा गाजीखाँ निवासी और पं० कँवरलाल जी स्वामी जी से मिलने के लिए बाग में गये। आठ-नौ बजे दिन का समय था।................मुक्ति के विषय पर बात चली थी। पण्डित बरातीलाल का मत यह था कि मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं होती। स्वामी जी का यह मत था कि जीव मुक्ति से लौटकर आता है। सारी बात स्मरण नहीं, एक शब्द स्मरण है अर्थात् स्वामी जी ने कहा था कि मुक्ति कोई कालापानी नहीं जिससे लौटकर न आ सके।

(लेखराम पृष्ठ ३८५)

एक साथ खानपान

(पादरी क्लर्क साहब से अमृतसर में प्रश्नोत्तर—जून, १८७८)

दूसरी बार स्वामी जी १५ मई, सन् १८७८ को अमृतसर गये और ११ जोलाई, सन् १८७८ तक वहाँ ठहरे। इसी बीच में एक दिन पादरी क्लर्क साहब ने स्वामी जी को कहा कि हम और आप एक मेज पर खाना खावें। स्वामी जी ने कहा कि इससे क्या लाभ होगा ? पादरी साहब ने कहा कि इससे मित्रता बढ़ेगी। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि सुन्नी और शियामुसलमान और रूसी व इंगलैण्ड वाले एक पात्र में खा लेते हैं और तुम और रोमन कैथोलिक एक मेज पर खा लेते हो पर हृदय से एक दूसरे से शत्रु हो फिर आपके केवल मेज पर खाने से हमारी दूसरे धर्म वालों से किस प्रकार मित्रता हो सकती है ? पादरी साहब निरुत्तर हो गये। (लेखराम पृष्ठ ३४८)

मद की अवस्था में चिन्तन

(श्री कन्हैयालाल इन्जीनियर रुड़की से प्रश्नोत्तर—२५ जौलाई, १८७८)

"क्या मद की अवस्था में ईश्वर-चिन्तन हो सकता है"

स्वामी जी जिन दिनों रुड़की में थे तो ला० कन्हैय्यालाल साहब इञ्जीनियर ने प्रश्न किया कि मद (नशा) की अवस्था में चित्त एकाग्र हो जाता है और जिस विषय की ओर चित्त आकृष्ट होता है उसी में डूबा रहता है। इसलिए इस अवस्था में जैसा अच्छा ईश्वर का ध्यान हो सकता है वैसा अन्य अवस्था में नहीं।

स्वामी जी ने कहा कि मद का नियम ऐसा ही है जैसा कि आप वर्णन करते हैं कि जिस वस्तु का ध्यान चित्त में होता है मनुष्य उसी में डूबा रहता है परन्तु वस्तुओं की वास्तविकता का ठीक ध्यान अनुकूलता से हुआ करता है। जब हम एक वस्तु का ध्यान करते हैं और उसका सम्बन्ध दूसरी वस्तुओं के साथ करके देखते हैं और उस वस्तु और अन्य वस्तुओं में सम्पर्क स्थापित करके देखते हैं तब उस वस्तु का ठीक ध्यान चित्त में प्रकट होता है अन्यथा उस वस्तु का ध्यान वास्तविकता के विरुद्ध प्रकट हुआ करता है और गुणी को गुण की अपेक्षा नहीं रहती। इसलिये मद की अवस्था में ईश्वर का ध्यान झूठा और अवगुणों के साथ होता है। प्रश्नकर्त्ता को यह उत्तर बहुत अच्छा लगा और पूर्ण सन्तोष हो गया।

ला० साहब स्वयं मद्य नहीं पीते थे प्रत्युत उससे घृणा करते थे परन्तु लोगों की वर्तमान शंका को स्वयं उपस्थित करके उत्तर मांगा था।

(लेखराम पृ० ३९५)

बाईबिल की अप्रामाणिकता

(कर्नल मानसल से रुड़की में शास्त्रार्थ—अगस्त, १८७८)

एकदिन कर्नल मानसल, आर० आई० साहब बहादुर कमांडिग अफसर रुड़की और कप्तान स्टुअर्ट आई० ई० साहब क्वार्टर-मास्टर व्याख्यान में पधारे। स्वामी जी उस समय इञ्जील पर व्याख्यान दे रहे थे। कर्नल मानसल ने बहुत ध्यान से सुना और जिन बातों को नहीं समझते थे उन बातों का कप्तान से अर्थ करते रहे, परन्तु बाइबिल पर आक्षेप सुनकर कर्नल के चित्त में कुछ उत्तेजना हुई और शंकायें करनी आरम्भ की। देर तक शास्त्रार्थ होता रहा पर उनका उत्तर सुनकर वे मौन हो जाते थे; यहां तक कि शास्त्रार्थ के एक अवसर पर आकर

सर्वथा मौन हो गये और बोले कि हम इसका उत्तर कल देंगे। परन्तु अगले दिन कप्तान साहब पधारे, कर्नल महोदय नहीं आये। (लेखराम पृ० ३९६)

अनेक विषय

(धर्मरक्षिणी सभा मेरठ से प्रश्नोत्तर—सितम्बर, १८७८)

१—जो कि चार धाम सप्तपुरी आदि नगर और ग्रामों में उन्नत शिखर और मन्दिर और इनमें देवताओं की मूर्तियों का स्थापन हो रहा है और परम्परा से पूजा होती आती है। अब इसमें आपको भ्रम और सन्देह हुआ सुना है जो अवश्य सन्देह नहीं तो श्रुति स्मृति के प्रमाण इसमें दीजिएगा और जो सन्देह नहीं है तो व्यक्त कीजियेगा।

२—गंगा जी सब नदियों से श्रेष्ठ और पूजनीय है इसमें भी प्रमाण दीजिये और जो सन्देह कुछ हो तो प्रकाशित करें।

३—और जो अवतार हुए हैं ये कौन हैं और उनका बनानेवाला कौन है, और पराक्रम उनको किसने दिया अथवा ये समर्थ हैं। अवतारों की सी सामर्थ्य किसी राजा में अथवा और मनुष्य में नहीं सुनी। प्रमाण श्रुति स्मृति का होय तो लिखियेगा। इति।

उत्तर शीघ्र देना योग्य है पत्र द्वारा उत्तर देने में सन्देह समझें तो बलेश्वर महादेव के मन्दिर में सभा नियत की जावे कि जिससे सत्यार्थ का निश्चय और सन्देह की निवृत्ति होवे। इति।

स्वामी जी के उत्तर

१—मुझ को पाषाणादि मूर्तिपूजन के विषय में सन्देह या भ्रम कदापि नहीं, प्रत्युत भली प्रकार निश्चय है कि यह वेदविरुद्ध है। परन्तु भ्रम आप लोगों का ठीक है कि जिसके कारण से पाषाणादि मूर्तियों को स्थानों और मन्दिरों में स्थापन करके उनका नाम देव या देव की मूर्ति रखते हैं और उनको देव मानते हैं। विचारणीय बात यह है कि पाषाणादि मूर्तिपूजन की शिक्षा न किसी ऋषि मुनि के वचन से और न किसी शास्त्र के उद्धरण से सिद्ध है प्रत्युत सबसे उसका निषेध प्रकट है। और न पाषाणादि मूर्ति का नाम किसी वेद या शास्त्र में देव लिखा है और न किसी ऋषि मुनि ने ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि तक अपनी पुस्तकों में "देव" का अर्थ पाषाणादि मूर्ति लिखा है। केवल परमेश्वर, विद्वान् और वेदमंत्रादि का नाम देव है जो कि दिव्य गुणों से युक्त हैं। पाषाणादि मूर्ति का नाम देव कदापि नहीं तो फिर बतलाइए कि आपका ऐसा मानना

किस रीति से ठीक है। इसके अतिरिक्त परमेश्वर की पाषाणादि की मूर्ति बनाकर उपासना करना तो वेदों के अनुसार कि जिन पर हमारा धर्म पूर्णतया निर्भर करता है, निषिद्ध और विरुद्ध है जैसा कि यजुर्वेद के ३२ वें अध्याय के तीसरे मंत्र से प्रकट है।

न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः॥

इस मन्त्र का अर्थ यह है। परमेश्वर की प्रतिमा अर्थात् सदृश उदाहरण, नाप का साधन या प्रतिबिम्ब जिसको चित्र कहते हैं किसी प्रकार नहीं। उसकी आज्ञा का ठीक-ठीक पालन और सत्यभाषणादि कर्म का करना जो उत्तम कीर्तियों का हेतु है, उसके नाम का स्मरण कहाता है। वही परमेश्वर तेजवाले सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति का कारण है। माता-पिता के संयोग से न उत्पन्न हुआ और न होगा। इसी से यह प्रार्थना है कि परमात्मन्! हम लोगों की सब प्रकार से रक्षा कर।

अब देखिये इस मन्त्र में स्पष्ट शब्दों में मूर्त्तिपूजन का निषेध है अर्थात् परमेश्वर का न उदाहरण है, न सादृश्य है और न उसका प्रतिबिम्ब या चित्र है और न हो सकता है तो फिर परमेश्वर की पाषाणादि मूर्ति बनाना और उसको परमेश्वर मानना और उसकी उपासना करना किस प्रकार सिद्ध हुआ। यह सब अज्ञान का फल है और कुछ नहीं प्रत्युत वेद में तो केवल एक निराकार परमेश्वर की उपासना की शिक्षा और अन्य की उपासना का निषेध है। फिर बतलाइये कि पचासों और सैकड़ों देवताओं की उपासना किस प्रमाण से ठीक है। बहुत से मन्त्रों में से दो वेदमन्त्र उपासना विषय के अपनी बात के समर्थन में यहां लिखता हूँ—

प्रथम मन्त्र—"**हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे**" आदि।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है—हिरण्यगर्भ जो परमेश्वर है वही एक सृष्टि के पूर्व वर्त्तमान था, वही इस जगत् का स्वामी है और वही पृथ्वी से लेकर सूर्यादि तक सब जगत् को रचकर उसका धारण कर रहा है। उसी सुखस्वरूप परमेश्वर देव की हम उपासना करें, और की नहीं। यह ऋग्वेद के आठवें अध्याय सातवें अष्टक और तीसरे वर्ग का पहला मन्त्र है।

दूसरा मन्त्र—"**अन्धन्तमः प्रविशन्ति**" आदि।

यह यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का नवां मन्त्र का अर्थ यह है—जो मनुष्य कभी न उत्पन्न होने वाले अनादि जड़रूप कारण की उपासना करते हैं वे अविद्यादि दुःखरूप अन्धकार में प्रवेश करते हैं। और जो मनुष्य संयोग से

उत्पन्न हुए पृथ्वी विकार-रूप कार्य्य में उपासना भाव से मन करते हैं, वे कारण की उपासना करने वाले मनुष्य से भी अधिक महाक्लेशों को प्राप्त होते हैं। इससे स्पष्टतया सिद्ध है कि मनुष्यों को उक्त कारण और कार्य्य अर्थात् उपर्युक्त सामग्री और उससे बनी या उत्पन्न होने वाली वस्तुओं और पाषाणादि मूर्ति की उपासना नहीं करनी चाहिये और केवल एक पूर्णब्रह्म परमेश्वर की उपासना करनी योग्य है।

युक्ति द्वारा देखने से भी पाषाणादि मूर्तिपूजन उचित नहीं हो सकता है क्योंकि यदि यह कहा जाये कि हम पाषाणादि की मूर्ति में देव की भावना करते हैं, कुछ उसको पाषाणादि नहीं मानते तो प्रथम तो यह बतलाइये कि भावना सच्ची है या झूठी। यदि सच्ची है तो सुख की भावना करने वालों को दुःख क्यों होता है अर्थात् जब संसार में सब सुख की भावना करते हैं और दुःख की भावना कोई नहीं करता फिर उसको दुःख क्यों होता है और सुख ही सुख क्यों नहीं होता? और इसी प्रकार पानी में दूध की और मिट्टी में मिश्री की भावना कर देखो! यदि भावना सत्य है तो ये वस्तुएँ भी भावना करने से वैसी ही हो जावेंगी और यदि न होवें तो भावना से पाषाणादि मूर्ति भी देव नहीं हो सकती। और यदि यह कहा जावे कि भावना झूठी है तो आपका मानना और करना झूठ हो लिया। और यदि यह कहो कि चूंकि परमेश्वर सब में व्यापक है इसलिये पाषाणादि मूर्तियों में भी व्यापक है तो यह आपकी बहुत बड़ी भूल है कि आप लोग चन्दन और पुष्पादि लेकर मूर्तियों पर चढ़ाते हैं। क्या चन्दन और फूल में परमेश्वर व्यापक नहीं? और इसके अतिरिक्त अपने ही में परमेश्वर को व्यापक क्यों नहीं मानते, पाषाणादि मूर्तियों को क्यों शिर नवाते हो? जब परमेश्वर व्यापक है और आप भी व्यापक मानते हैं तो केवल पाषाणादि मूर्तियों ही में क्यों व्यापक मानकर उसकी उपासना करते हो। इस दशा में तो केवल एक वस्तु में परमेश्वर को व्यापक मानकर उसकी व्यापकता को छोटा करते हो। यदि यह कहा जावे कि मूर्तिपूजन अज्ञानी मनुष्यों के ब्रह्म के पहचानने के लिये एक साधन बना रखा है तो यह बात भी बुद्धि और युक्ति से पूर्णतया दूर है क्योंकि गुण गुणी से और गुण प्राप्त करने के साधनों से मिलता है। जड़ पदार्थ और ऐसे साधनों से कभी गुण नहीं मिल सकता है, इसलिये पाषाणादि मूर्तिपूजन से तो दिन-प्रतिदिन बुद्धि पत्थर होती जायेगी। ब्रह्म के पहचानने की तो बात ही क्या है और दूसरे आपके इस कथन से आपका पहला कथन भावना का भी झूठ हो गया क्योंकि जब अज्ञानी लोग ब्रह्म को नहीं जान सकते हैं तो वे केवल पाषाणादि मूर्ति को परमेश्वर जानेंगे न कि परमेश्वर को पत्थर से पृथक और पत्थर में व्यापक जानेंगे। और यदि यह

कहो कि हम पाषाणादि मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा करके प्राण डाल देते हैं फिर वह मूर्ति जड़ नहीं रहती है तो यह बात बिल्कुल मूर्खता की है क्योंकि पाषाणादि मूर्ति में कभी प्राणप्रतिष्ठा से प्राण आते नहीं देखे और न जीव के लक्षण तथा कर्म कभी मूर्ति में दृष्टिगोचर हुए। और यदि आपके कथनानुसार यह मान भी लिया जाये कि प्राणप्रतिष्ठा से पाषाणादि मूर्तियों में जान भी पड़ जाती है तो फिर आप मृतक को जीवित क्यों नहीं कर लेते हैं। मृतक शरीर में तो श्वास के आने के लिये छिद्र भी होते हैं परन्तु पाषाणादि मूर्तियों में कुछ भी नहीं होता है और यह जो आपने लिखा है कि पाषाणादि मूर्तिपूजन परम्परा से चला आता है तो यह केवल भ्रम और अविद्या का फल है। विचार तो कीजिये कि यदि पाषाणादि मूर्तिपूजन सनातन है तो वेदों में उसकी शिक्षा होनी चाहिये क्योंकि वेद सनातन हैं और जब वेदों में उसकी शिक्षा नहीं तो पाषाणादि मूर्तिपूजन भी सनातन नहीं है। मन्दिर और धामादि के विषय में तो आपने लिखा है ये सब पाषाणादि मूर्तिपूजन के सहायक हैं। जबकि पाषाणादि मूर्तिपूजन ही वेदविरुद्ध और झूठ सिद्ध हो लिया तो उनकी क्या बात है!

२—प्रथम तो प्रश्न आपका विचित्र प्रकार का है उसकी विशेषता उसके वाक्य से ही प्रकट है, लिखने या कहने में नहीं आ सकती। आप पूछते हैं कि गंगा जी के सब नदियों में पूजनीय और श्रेष्ठ होने में क्या प्रमाण है? इससे विदित हुआ कि या तो गंगा जी आपकी दृष्टि में श्रेष्ठ और पूजनीय नहीं और यदि श्रेष्ठ और पूजनीय भी हैं तो आप इसका प्रमाण नहीं दे सकते हैं अन्यथा इस बात का मुझसे पूछना क्या आवश्यक था। अब इतना प्रश्न जो शेष रहा कि यदि गंगा जी के पूजनीय और श्रेष्ठ होने में कुछ सन्देह है तो प्रकट करो। इसका उत्तर है कि मुझको इस बात में किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं, प्रत्युत मैं निश्चय करके गंगा जी को श्रेष्ठ मानता हूँ क्योंकि और किसी नदी का ऐसा उत्तम और गुणसहित जल नहीं है परन्तु गंगा जी को मुक्ति देने और पाप छुड़ाने का साधन नहीं मान सकता हूँ। भलीभाँति समझ लो कि पाप और पुण्य जितना किया जाता है उससे एक कण न घट सकता है और न बढ़ सकता है। और जब गंगा जी के स्नान से मुक्ति प्राप्त हुई या पाप छूट गये तो फिर सत्यधर्म और उत्तम कर्म करना, परमेश्वर की आज्ञा में चलना और उसकी स्तुति और उपासना करना बिल्कुल व्यर्थ है क्योंकि जब एक चीज सरलता से मिल सकती है तो फिर कठिन मार्ग को क्यों चलिये। वेदादि सत्यशास्त्रों में कहीं भी गंगा जी के स्नान का माहात्म्य मुक्तिदायक होने में नहीं लिखा है और यदि कहो कि तीर्थादि नाम तो वेद और धर्मशास्त्रों में लिखे हैं तो यह केवल आपकी भूल है। वेदादि सत्यशास्त्रों में वेदों के पढ़ने, धर्म के अनुष्ठान और सत्य के

ग्रहण और असत्य के त्याग का नाम तीर्थ लिखा है क्योंकि इन साधनों से ही मनुष्य दुःखसागर से तरकर मुक्ति पा सकता है। देखिये प्रथम तो मनु जी महाराज ने मनुस्मृति के पांचवें अध्याय के नववें श्लोक में लिखा है—

"अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

इसका अर्थ यह है--जल से शरीर की शुद्धि, सत्य से मन की शुद्धि, विद्या और तप से जीवात्मा की शुद्धि और ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि होती है।

दूसरे छान्दोग्योपनिषद् का यह वचन है—

"अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः ।"

इसका अर्थ यह है—मनुष्यों को इस तीर्थ का सेवन करना उचित है कि अपने मन से वैरभाव को छोड़कर सबके सुख देने में प्रवृत्त रहें और संसारी व्यवहार के बर्ताव में किसी को दुःख न देवें। इसके अतिरिक्त और कोई तीर्थ नहीं है।

अब समझ लेना चाहिये कि सत्यशास्त्रों तथा अन्य युक्तियों के अनुसार गंगा कभी मुक्तिदायक नहीं हो सकती।

३—आप जिनको परमेश्वर का अवतार कहते हैं वे महा उत्तम पुरुष थे, परमेश्वर की आज्ञा में चलते थे, सत्य धर्म और न्यायादि गुणों सहित थे, वेदादि सत्यशास्त्रों के पूर्ण जानने वाले थे। **आजतक कोई और ऐसा हुआ और न है** परन्तु आप जो इन उत्तम पुरुषों को परमेश्वर का अवतार मानते हो यह आपकी भ्रान्ति है। भला परमेश्वर का कभी अवतार हो सकता है? वह तो अजर और अमर है। जब उसका अवतार हुआ तो उसका यह गुण जाता रहा। इसके अतिरिक्त जब परमेश्वर व्यापक और सर्वत्र विद्यमान है तो उसका एक शरीर में आना क्योंकर हो सकता है और यदि कहो कि परमेश्वर प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान है तो यह सत्य है परन्तु यह नहीं कि केवल एक मनुष्य और एक स्थान में है और औरों में नहीं। इसके अतिरिक्त परमेश्वर को जन्म लेने की क्या आवश्यकता है? यदि आप कहें कि रावण और कंसादि का बिना अवतार लिये परमेश्वर कैसे मार सकता था तो यह आपका कहना अत्यन्त अशुद्ध है। क्योंकि जब वह निराकार परमेश्वर बिना शरीर के सब जगत् का पालन और धारण कर रहा है और बिना शरीर के जगत् का प्रलय भी कर सकता है तो उसको बिना शरीर के कंसादि एक-दो मनुष्य का मारना क्या कठिन था? और जो यह बात आप पूछते हैं कि इन अवतारों का बनानेवाला कौन है और किसने इनको पराक्रम दिया अथवा ये स्वयं समर्थ थे।

इसका उत्तर अत्यन्त सरल और स्पष्ट है। सबका बनाने वाला और पराक्रम देनेवाला परमेश्वर है। उसके अतिरिक्त और कोई बनाने और पराक्रम देने वाला नहीं हो सकता। परन्तु आपके प्रश्न से प्रकट होता है कि आपकी दृष्टि में कदाचिद् कोई और भी परमेश्वर के अतिरिक्त बनाने और पराक्रम देनेवाला है। अपने आप तो न कोई समर्थ हुआ और न है और न होगा। यह जो आप प्रश्न करते हैं कि उन अवतारों की सी सामर्थ्य और किसी राजा अथवा मनुष्य में क्यों नहीं हुई, यह आपका कहना तो बिल्कुल व्यर्थ है क्योंकि जिसमें जैसे गुण होते हैं वैसी उसमें सामर्थ्य होती है और जैसी जिसमें सामर्थ्य है वैसे ही उसमें गुण होते हैं। आजकल बहुत से ऐसे मनुष्य हैं कि बिल्कुल कर्महीन और अज्ञानी हैं और बहुत से ऐसे विद्वान् सामर्थ्य और पराक्रम वाले हैं कि हजारों में और कोई उनके समान नहीं तो क्या इस कारण से उन सामर्थ्य वाले मनुष्यों को परमेश्वर का अवतार कहना या मानना उचित है? वाह! वाह! परमेश्वर का अवतार होने का आपने क्या बढ़िया प्रमाण सोच रखा है। किसी ने सत्य कहा है—

'प्रत्येक की विचारशक्ति उसकी सामर्थ्य के अनुसार होती है।'

परन्तु बड़े दुःख की बात है कि आप लोग यद्यपि रामचन्द्र जी और श्रीकृष्णादि उत्तम पुरुषों को परमेश्वर का अवतार मानते हो फिर भी उन की परले सिरे की निन्दा और बुराई करने में संलग्न रहते हो। नगर-नगर और गली-गली में उनकी पाषाणादि की मूर्ति बनवाकर उनसे भीख मंगवाई जाती है और पैसे-पैसे के लिये सर्वसाधारण के सामने उनके हाथ फैलवाये जाते हैं। जब धनवान् अथवा साहूकार शिवालय या मन्दिर में आते हैं या पुजारी जी स्वयं उनके पास जाते हैं तो कहते हैं कि सेठ जी! आज तो नारायण भूखे हैं, राधाकृष्ण जी को कल रात से बालभोग भी नहीं मिला है। इन दिनों की सीता-राम जी को प्रशादी की ही कठिनाई पड़ रही है। सर्दी के कपड़े नारायण के पास नहीं हैं और शीतकाल शिर पर आ गया है। पुराने कपड़े सीताराम जी के तो कोई दुष्ट चुरा ले गया, उसी दिन से हम सीताराम जी को तालीकुंजी में बन्द रखते हैं, नहीं तो उनकी भी कुशलता नहीं थी। और यदि किसी रईस या धनवान् की ओर से शिवालय या मन्दिर का मासिक व्ययादि नियम हुआ तो पुजारी जी या बाबा जी जब कहीं बैठे होते हैं तो अपनी झूठी प्रेमभक्ति को जताने के लिये कहते हैं कि लो यजमान! हमको जाने दो, अब हमारे सीता-राम जी या राधाकृष्ण जी भूखे होंगे और जब हम जावेंगे तो उनको भोजन मिलेगा अन्यथा भूखे बन्द रहेंगे। अब देखिये रामलीला को बनवाकर किस प्रकार आप लोग अपने उत्तम पुरुषों की नक्कल बनवाते और कितनी उनकी

निन्दा कराते हो और अन्य मतवालों को उन पर हँसवाते हो और उनका अप-मान कराते हो। इस लोला का तो कुछ वर्णन ही नहीं, देखो प्राय: लोग क्या धनवान् क्या रईस, क्या दुकानदार और क्या श्रमिकादि, सब इस रास की सभा में एकत्रित होते हैं और रास देख-देख अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। कोई कहता है कि कृष्ण जी अच्छा नाचते हैं, कोई कहता है राधा जी बड़ी शोभा-वान हैं, कोई कन्हैय्या जी के गाने पर प्रसन्न हो रहा है, कोई राधा जी की मूर्ति पर मोहित और लट्टू है अत्यन्त प्रेमभक्ति प्रकट कर रहा है। कोई कहता है वाह !-वाह ! साक्षात् राधाकृष्ण जी ही आ गये हैं। इन्हीं कन्हैय्या जी ने हजारों गोपियों के साथ भोगविलास किया है, १६०० रानियां रखी हैं, बहुत दूध माखन चुराकर खाया है, नहाते हुए नंगी स्त्रियों के कपड़े तक चुरा लिये हैं और उनको पहरों नग्न सामने खड़ा रखा है। अधिक और कहाँ तक तुम्हारी बातों का वर्णन करूँ। अब लज्जा भी रोकती है और बुद्धि भी आज्ञा नहीं देती परन्तु खेद, लाख बार खेद कि आप लोग अपने देश के ऐसे-ऐसे राजा, महाराजों को जो हजरों-लाखों पर शासन करते थे और उनका पालन तथा सहायता करते थे। और ऐसे उत्तम पुरुषों को जो समस्त आयु परमेश्वर की आज्ञा में रहे सत्यवादिता, सदाचार और धर्म्म के कामों में अद्वितीय हुए, उनको खाने, कपड़े का भिक्षुक बनाते हो, अधर्मी, व्यभिचारी, तमाशबीन और चोर ठह-राये हो ! और केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि और मनोरंजन के लिये उनकी अप-कीर्ति करते और कराते हो। और उनके विषय में ऐसी झूठी कहानियां कि जिनका प्रमाण किसी पुस्तक या इतिहास से प्राप्त नहीं हो सकता, अपने मन से बना-बनाकर वर्णन करते हो और फिर अपने आपको उनका भक्त, गुणगायक और प्रशंसक समझते हो। हाय, हाय, इन बातों के वर्णन से मन पर इतना शोक और दु:ख का भार है कि अधिक वर्णन करने की सामर्थ्य नहीं। इसलिये इसी पर संतोष करता हूँ और अपने इस कथन के समर्थन कि पर-मेश्वर का अवतार किसी अवस्था में नहीं हो सकता है दो वेदमन्त्र कहता हूँ। पहला यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का आठवां मन्त्र है और दूसरा यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय का पहला मन्त्र है—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

इस मन्त्र का अर्थ यह है परमेश्वर सब में व्यापक और अनन्त पराक्रम-वाला है वह सब प्रकार के शरीर से रहित है कटने, जलने आदि रोगों से परे है, नाड़ी आदि के बन्धन से पृथक् है। सब दोषों से रहित और सब पापों से न्यारा है। सबका जानने वाला, सबके मन का साक्षी, सबसे श्रेष्ठ और अनादि है।

वही परमेश्वर अपनी प्रजा को वेद के द्वारा अन्तर्यामी रूप से व्यवहारों का उपदेश करता है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमि सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥

इस मन्त्र का अर्थ यह है परमेश्वर तीनों प्रकार के जगत् (अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान) को रचता है, उससे भिन्न दूसरा और कोई जगत् का रचने वाला नहीं है क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है। मोक्ष भी परमेश्वर की ही कृपा से मिलता है। पृथिवी आदि जगत् परमेश्वर के व्यापक होने से स्थित हैं और वह परमेश्वर इन वस्तुओं से पृथक् भी है क्योंकि उसमें जन्मादि व्यवहार नहीं। वह अपने सामर्थ्य से सब जगत् को उत्पन्न करता है और आप कभी जन्म नहीं लेता है।

अब भली प्रकार सिद्ध हो गया कि वेद और बुद्धिपूर्वक युक्तियों के अनुसार परमेश्वर का अवतार किसी प्रकार से नहीं हो सकता। इति।

नोट—उपर्युक्त प्रश्न धर्मरक्षिणी सभा मेरठ की ओर से स्वामी जी महाराज से उस समय पूछे गये जब वे ५ सितम्बर, सन् १८७८ से ला० रामसरनदास साहब रईस, मेरठ, के मकान पर उनके अनुरोध से व्याख्यान दे रहे थे। १० सितम्बर को सभा समाप्ति के समय सभा में यह घोषणा की गई कि समस्त आये हुए प्रश्नों के उत्तर कल से दिये जाने आरम्भ होंगे। जिन सज्जनों ने प्रश्न किये हैं वे कल के दिन से सभा में आकर उत्तर सुन लें और जिस किसी को उत्तरों के लिखने की इच्छा हो वह उसी समय लेखबद्ध कर लें। इस घोषणा के अनुसार तीन दिन में समस्त प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी ने सभा में दे दिये।

(लेखराम पृ० ४०१, ४०६)

मेरठ में शास्त्रार्थ के नियम

सितम्बर, १८७८

१—उभय पक्ष से निम्नलिखित १२ सज्जन सभा के प्रबन्धक नियत किये जायें, यदि वे स्वीकार करें।

यहाँ १२ सज्जनों के नाम थे।

२—इनमें से एक सज्जन और यदि सम्भव हो तो मातहत जज साहब प्रबन्धक सभा के सभापति नियत किये जायें।

३—प्रबन्धकों के अतिरिक्त उपस्थित जन की संख्या हर एक ओर से पचास-पचास से अधिक न हो तो अच्छा है।

४—उपस्थित होने वालों की जो संख्या नियत की जावे उतने ही टिकट छपवाकर आधे-आधे हरेक पक्ष को दिये जावें।

५—हर एक पक्ष अपनी ओर के उपस्थित मनुष्यों को नियम में रक्खे और सब प्रकार से उनका उत्तरदाता रहे।

६—हर एक पक्ष की ओर से योग्य पण्डितों की संख्या दस से अधिक न हो, कम का अधिकार है।

७—उभयपक्ष में से केवल एक ही पण्डित सभा में भाषण करे अर्थात् एक ओर से स्वामी दयानन्द और दूसरी ओर से पण्डित श्रीगोपाल।

८—इस सभा में हर विषय का खण्डन-मण्डन वेदों के प्रमाण ही से किया जावे।

९—वेदमन्त्रों के अर्थों के निश्चय के लिए ब्रह्मा जी से जैमिनि जी तक के ग्रन्थों को, जिसे दोनों पक्ष मानते हैं, साक्षी देनी होगी जिनका ब्यौरा इस प्रकार है—

ऐतरेय, शतपथ, साम, गोपथ, शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, निघण्टु, छन्द, ज्योतिष, पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, वेदान्त, आयुर्वेद, गान्धर्ववेद अर्थवेद आदि।

१०—विदित रहे कि ऐतरेय **ब्राह्मण** से लेकर अर्थवेदादि **तक ऋषियों और मुनियों की** ही साक्षी और प्रमाण होंगे, परन्तु यदि इनमें भी कोई वाक्य वेदविरुद्ध होगा तो दोनों पक्ष **उसको स्वीकार न करेंगे।**

११—उभयपक्ष को वेदों तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों, सृष्टि-क्रम और सत्य धर्म से युक्त भाषण करना तथा मानना होगा।

१२—इस सभा में जो व्यक्ति किसी पक्ष का पक्षपात और राग प्रदर्शन करे, उसे सहस्र ब्रह्महत्या का पाप होगा।

१३—यतः बहुत बड़ी बात केवल एक पाषाणादि मूर्तिपूजन ही है, इस लिए इस सभा में मूर्तिपूजन का खण्डन और मण्डन होगा और यदि वेदों की रीति से पण्डित जी पाषाणादि मूर्तिपूजन का मण्डन कर देवे तो पण्डित जी की सब बातें भी सच्ची समझी जावेंगी और स्वामी जी मूर्तिपूजन का खण्डन को छोड़ मूर्तिपूजन स्वीकार कर लेवेंगे और जो स्वामी जी वेदों के प्रमाण से पाषाणादि मूर्तिपूजन का खण्डन कर देवें तो स्वामी जी की और बातें भी सच्ची समझी जावेंगी और पण्डित जी उसी समय से मूर्तिपूजन छोड़कर मूर्तिपूजन का खण्डन स्वीकार कर लेवें। ऐसा ही उभय पक्ष को स्वीकार करना होगा।

१४—उभयपक्ष से प्रश्नोत्तर लिखित होने चाहिये अर्थात् हर एक प्रश्न मौखिक किया जावे और तत्क्षण लिख दिया जावे। बलिक जहां तक सम्भव हो वक्ता का एक एक शब्द लिखा जावे।

हर एक प्रश्न के लिये पांच मिनट और हर एक उत्तर के लिए पन्द्रह मिनट नियत हों और नियत समय की कमी का अधिकार है, परन्तु अधिक समय का नहीं।

१५—सभा में स्वामी जी पण्डित जी, तथा अन्य पुरुषों की ओर से आपस में कोई कठोर भाषण न हो, प्रत्युत अत्यन्त सभ्यता और नम्रता से सत्यासत्य का निश्चय करें।

१६—सभा का समय ६ बजे सयंकाल से नौ बजे रात्रि तक रहे तो उत्तम है।

१७—प्रश्नोत्तर के लिखने के लिए तीन लेखक नियत होने चाहिए और प्रत्येक लेख पर मिलान करने के पश्चात् प्रतिदिन दोनों पक्षों के हस्ताक्षर होकर एक-एक प्रति हर पक्ष को दी जावे और [एक] प्रति बक्स में बन्द करके उस पर उभयपक्ष और सभापति का ताला लगाकर सभापति के पास रहे ताकि लेखों में कुछ न्यूनाधिक न होने पावे और आवश्यकता के समय काम आवे।

१८—सभास्थल सब प्रबन्धकों की सम्मति के अनुसार नियत होगा।

१९—जम्मू और काशी आदि स्थानों के पण्डितों की सम्मति के ऊपर इस सभा के निर्णय का निर्भर न होना चाहिए, क्योंकि यह स्थान मूर्तिपूजा के घर हैं और यहां इस विषय में पण्डितों से शास्त्रार्थ भी हो चुका है। इसलिए उपर्युक्त वेद-शास्त्रादि जिनमें हर विषय की विषद व्याख्या की गई है मध्यस्थ और साक्षी के लिए पर्याप्त हैं। हां यह अधिकार है कि यदि दूसरे पक्ष को कुछ सन्देह व संशय हो तो आज १७ तारीख सितम्बर, सन १८७८ से दो दिन के भीतर उपर्युक्त स्थानों व अन्य जगह से उस पण्डित से जो उसकी सम्मति में उत्तम और श्रेष्ठ हो आने जाने के विषय में तार द्वारा बातचीत करके स्थिर कर ले वा प्रबन्ध करलें और आज से छः दिन के भीतर अर्थात् २२ सितम्बर, रविवार के दिन तक उसे यहां बुला लेवें। यदि दूसरे पक्ष की ओर से इस अन्तर में उचित प्रबन्ध न हो वा विरुद्ध कार्यवाही हो तो उस पक्ष की सभी बातें कच्ची और आधार-शून्य समझी जावेंगी और स्वामी जी इस अन्तर में कहीं चले जावें वा इस लेख से बद्ध न रहें तो उनकी बात कच्ची और आधारशून्य समझी जावेगी।

२०—दोनों पक्षों को सभा में वे सब पुस्तकें, जिनका वे प्रमाण दें सभा के

समय अपने साथ लानी चाहियें। उभयपक्ष को विना असली पुस्तकों के मौखिक साक्षी स्वीकार न होगी।

अन्तिम नियम लाला किशनसहाय को नहीं लिखाया गया था, परन्तु आगे कोई कठिनता न हो इस बात को दृष्टि में रखकर यह नियम भी सम्मिलित किया गया। लिखा हुआ १७ सितम्बर, सन् १८७८ का।

१८—सितम्बर को भी लाला किशनसहाय ने कोई उत्तर न भेजा परन्तु पण्डित श्रीगोपाल की ओर से कुछ नियम इन नियमों के परिवर्तन में महाराज के पास आये।

पं० श्रीगोपाल जी ने स्वामी जी के प्रस्तावित नियमों में निम्नलिखित परिवर्तन करके भेजे थे—

१—प्रबन्धकों में ८ नाम और बढ़ाए जावें और उन्हें प्रबन्धक सभा और निश्चयकर्त्ता सनातन धर्म लिखना चाहिये।

२—मध्यस्थ अवश्य होना चाहिए और साहब कलक्टर जिला बुलन्दशहर संस्कृतज्ञ हैं, मध्यस्थ हों।

३—उपस्थित होने वाले मनुष्यों की संख्या सीमित करने और टिकट देने की कोई आवश्यकता नहीं।

४—झूठ सच को विना पक्षपात प्रकट करने के लिए मध्यस्थ होना आवश्यक है जब कि आप कहते हैं कि ग्रन्थों में वेदविरुद्ध वाक्य होगा तो उसका प्रमाण न माना जावेगा।

५—समय चार बजे से सात बजे तक रहेगा। ५ मिनट प्रश्न और १५ मिनट उत्तर लिखने के लिए अपर्याप्त हैं समय की कोई सीमा न होनी चाहिए।

६—दो दिन में बाहर के पण्डितों का आना असम्भव है, अतः उन्हें लाने के लिये मनुष्य भेजना पड़ेगा और जब तक वे न आवें आपको यहां ही ठहरना होगा। यदि इसे स्वीकार न करें तो किसी वेद और उभयपक्ष स्वीकृत ग्रन्थों के जानने वाले विद्वान् को मध्यस्थ बनावें। बिना मध्यस्थ के सभा का पूरा-पूरा प्रबन्ध नहीं हो सकता।

१८ सितम्बर को महाराज ने अपने हस्ताक्षरों से एक पत्र लाला किशनसहाय के पास भेजा कि यदि आप हृदय से कुछ निर्णय करना चाहते हैं तो आप नियम के अनुसार कार्य कीजिये, हम उनसे बद्ध हैं। इसके उत्तर में एक पत्र विना हस्ताक्षरों के लाला किशनसहाय के नाम से आया जिसमें लिखा था कि पण्डितों

की बातों से ज्ञात हुआ कि आप वेदविरुद्ध उपदेश करते हैं और कुछ अनुचित शब्द महाराज के विषय में लिखे थे।

इसके उत्तर में महाराज ने लिखा कि आपको वेदों से अनभिज्ञ पण्डितों के कहने से ऐसा लिखना उचित न था। उत्तम हो यदि आप उचित समझें तो मैं अपने दो विद्यार्थियों को आपके यहां सभा में भेज दूं और वे यदि आप अनुमति दें तो आपके पण्डितों से वेद विषय में कुछ प्रश्न करें, तब आपको पण्डितों की व्यवस्था ज्ञात हो जायेगी। यदि आपको यह स्वीकार न हो तो आप कृपापूर्वक मेरे निवास स्थान पर अर्थात् बाबू छेदीलाल के गृह पर पधारें और सब शंकाओं को निवृत्त कर लेवें। इसका उत्तर तो आया, परन्तु उस पर प्रेषकों के हस्ताक्षर न थे। उसका सार यह था कि आप वेद बिल्कुल नहीं जानते और आप मार्ग भूले हुए हैं और हमारे पण्डित विद्वान् हैं। हमें हमारे पण्डित यथा पण्डित श्रीधर कहते और लिखते हैं कि जब तक आप अपना वर्ण और आश्रम सिद्ध न कर देवेंगे तब तक हमें आपके पास नहीं आना चाहिए और न पण्डितों को आपसे संभाषण करना चाहिये।

अब तो शास्त्रार्थ स्पष्ट रूप से नकार हो गया और सारा भांडा फूट गया। सनातन-धर्म-रक्षिणी सभा ने जो शास्त्रार्थ के लिए इतना आडम्बर रचा, वह दिखाने मात्र को था। भला इसके भी कोई अर्थ थे कि महाराज तो बार-बार कहें कि लाला किशनसहाय के हस्ताक्षरों का पत्र लाओ परन्तु लाला साहब अपने नाम से पत्र तो भिजवाते हैं परन्तु उन पर हस्ताक्षर नहीं करते और अन्त तक किसी पत्र पर उन्होंने हस्ताक्षर किये ही नहीं।

(देवेन्द्रनाथ २। २१७, लेखराम पृ० ४१३ से ४१७)

अनेक विषय

(धर्मसभा से फर्रुखाबाद में प्रश्नोत्तर— अक्तूबर, १८७८)

दयानन्द सरस्वती के पास यह प्रश्न धर्मसभा फर्रुखाबाद की ओर से भेजे जाते हैं कि आप्त ग्रन्थों के प्रमाण से इन प्रश्नों का उत्तर पत्र द्वारा धर्मसभा के पास भेज दें। और यह भी विदित रहे कि धर्मसभा के सभासदों ने यह संकल्प कर लिया है कि यदि आप इन प्रश्नों के उत्तर पत्र द्वारा प्रमाण सहित न देवेंगे तो यह समझा जावेगा कि आपने अपना मत आधुनिक मान लिया। और एक प्रति इन प्रश्नों की आपकी मतानुयायी सभाओं में और अमरीका के सज्जनों के पास भेजी जावेगी और देशी और अंग्रेजी पत्रों में मुद्रित की जायेगी। इन प्रश्नों पर चौदह व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किये थे कि जिनके नाम "भारत सुदशा प्रवर्तक" पत्रिका में लिखे हैं।

विज्ञापन का उत्तर

जो आप लोगों को शास्त्र प्रमाण सहित उत्तर अपेक्षित था तो इतने पंडितों में से कोई एक भी तो कुछ पंडिताई दिखलाता। आपके तो प्रश्न सबके सब अंड-बंड शास्त्रविरुद्ध यहाँ तक कि भाषारीति से भी शुद्ध नहीं हैं। ऐसों का उत्तर प्रमाणसहित मांगना मानों गाजरों की तुला देकर तुरन्त विमान की मार्ग परीक्षा करना है। शास्त्रोक्त उत्तर शास्त्रज्ञों को ही मिलते हैं क्योंकि वे इन वचनों को समझ सकते हैं। तुम्हारे आगे शास्त्रोक्त वचन लिखना ऐसा है जैसा कि गंवार मनुष्यों के आगे रत्नों की थैलियां खोल देनी। वास्तव में तुम्हारा एक भी प्रश्न उत्तर देने के योग्य न था तथापि हमने "तुष्यतु दुर्जनः" इस न्याय से सबका उत्तर शास्त्रोक्त प्रमाण सहित दिया है। समझा जाये तो समझ लो।

नोट—उपर्युक्त २५ प्रश्न ६ अक्तूबर, सन् १८७८ को शाम के समय पंडितों ने स्वामी जी के पास भेजे। वास्तव में उस समय स्वामी जी को उन प्रश्नों के सुनने तक का भी समय न था परन्तु उन लोगों के आने से सुनते ही उसी समय उनका उत्तर देना आरम्भ किया और उनसे लिख लेने को कहा परन्तु वे न लिख सके।

७ अक्तूबर, सन् १८७८ को बहुत से आर्य सभासदों ने शाम के समय प्रार्थना करके उन प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी से लिखवा लिये और स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् शुद्ध करके १२ अक्तूबर, सन् १८७८ को आर्यसमाज में सुनाये तत्पश्चात् वे उत्तर पोप लोगों के पास भेज दिये।

फर्रुखाबाद के पण्डितों से प्रश्नोत्तर

पहला प्रश्न—आप्त ग्रन्थों अर्थात् वेदादिक सत्यशास्त्रों के अनुसार परिव्राजकों अर्थात् संन्यासियों के धर्म क्या हैं। वेदों के अनुसार उनको यानों अर्थात् सवारियों पर चढ़ना और धूम्र अर्थात् हुक्का आदि पीना योग्य है या नहीं?

उत्तर—वेदादि शास्त्रों में विद्वान् होकर वेदानुकूल सत्य शास्त्रोक्त रीति से पक्षपात, शोक, वैर, अविद्या, हठ, दुराग्रह स्वार्थसाधन, निन्दा-स्तुति, मान, अपमान, क्रोधादि दोषों से रहित हो स्वपरीक्षापूर्वक सत्यासत्य निश्चय करके सर्वत्र-भ्रमणपूर्वक सर्वथा सत्यग्रहण असत्य परित्याग से सब मनुष्यों की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति, आसन के साधन, सत्यविद्या, सनातन धर्म, स्वपुरुषार्थयुक्त करके व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों से वर्तमान करके

दुष्टाचरणों से पृथक् कर देना संन्यासियों का धर्म है। लाभ में हर्ष, अलाभ में शोकादि से रहित होकर विमानों में बैठना और रोगादि निवारणार्थ औषधिवत् धूम्र अर्थात् हुक्का पीकर परोपकार करने में तत्पर तिन्हों को कुछ भी दोष नहीं। यह सब शास्त्रों में विधान है परन्तु तुमको वर्तमान वेदादि सत्य शास्त्रों से विरुद्ध होने के कारण भ्रम है सो इन सत्य ग्रन्थों से विमुखता न चाहिए।

दूसरा प्रश्न—यदि आपके मत में पापों की क्षमा नहीं होती तो मन्वादिक आप्त ग्रन्थों में प्रायश्चित्त का क्या फल है ? वेदादि ग्रन्थों में परमेश्वर की क्षमाशीलता और दयालुता का वर्णन है इससे क्या प्रयोजन है ? यदि उसमे आगन्तुक पापों की क्षमा से प्रयोजन है तो क्षमा न हुई और जब मनुष्य स्वतन्त्र है और आगन्तुक पापों से बचा रहे तो उसमें परमेश्वर की क्षमाशीलता क्या काम आ सकती है।

उत्तर—हमारा किन्तु हम लोगों का वेद-प्रतिपादित मत के अतिरिक्त और कोई कपोलकल्पित मत नहीं है। वेदों में कहीं किये हुए पापों की क्षमा नहीं लिखी न कोई युक्ति से भी विद्वानों के सामने किए हुए पापों की क्षमा सिद्ध कर सकता है। शोक है उन मनुष्यों पर कि जो प्रश्न करना नहीं जानते और करने को उद्यत हो जाते हैं। क्या प्रायश्चित्त तुमने सुखभोग का नाम समझा है ? जैसे जेलखाने में चोरी आदि पापों के फल का भोग होता है वैसे प्रायश्चित्त भी समझो। वहाँ क्षमा की कुछ भी कथा नहीं। क्या प्रायश्चित्त वहां पापों के दुःखरूप फल का भोग है ? कदापि नहीं। परमेश्वर की क्षमा और दयालुता का यह प्रयोजन है कि बहुत से मूढ मनुष्य नास्तिकता से परमात्मा का अपमान और खंडन करते और पुत्रादि के न होने या अकाल में मरने, अतिवृष्टि, रोग और दरिद्रता के होने पर ईश्वर को गाली प्रदानादि भी करते हैं तथापि परब्रह्म सहन करता और कृपालुता से रहित नहीं होता। यह भी उसके दयालु स्वभाव का प्रयोजन है। क्या कोई न्यायाधीश कृतपापों की क्षमा करने से अन्यायकारी और पापों के आचरण का बढ़ाने वाला नहीं होता ? क्या परमेश्वर कभी अपने न्यायकारी स्वभाव से विरुद्ध अन्याय कर सकता है ? हाँ जैसे न्यायाधीश विद्या और सुशिक्षा करके पापियों को पाप से पृथक् करके राजदण्ड प्रतिष्ठितादि करके शुद्ध कर सुखी कर देता है वैसे परमात्मा को भी जानो।

तीसरा प्रश्न—यदि आपके मत से तत्त्वादिकों के परमाणु नित्य हैं और कारण का गुण कार्य्य में रहता है तो परमाणु जो सूक्ष्म और नित्य हैं उनसे संसारादिक स्थूल और सान्त कैसे उत्पन्न हो सकता है ?

उत्तर—जो परम अवधि सूक्ष्मता की अर्थात् जिसके आगे स्थूल से सूक्ष्मता कभी नहीं हो सकती वह परमाणु कहलाता है। जिसके प्रकृत, अव्याकृत, अव्यक्त,

कारणादि नाम भी कहलाते हैं। वे अनादि भी कहलाते हैं। वह अनादि होने से सत् है। हाय दुःख है लोगों की उलटी समझ पर जो कारण के गुण समवाय सम्बन्ध से हैं वे कारण में नित्य हैं। जो कारण के करणावस्था में नित्य हैं वे कार्य्यावस्था में भी नित्य हैं क्या जो गुण कारणावस्था में हैं वे कार्य्यावस्था में वर्तमान होकर जब कारणावस्था होती है तब भी कारण के गुण नित्य नहीं होते और जब परमाणु मिलकर स्थूल होते हैं या पृथक्-पृथक् होकर करणरूप होते हैं तब भी उनके विभाग और संयोग होने का सामर्थ्य नित्य होने से अनित्य नहीं होते। वैसे ही गुरुत्व, लघुत्व होने का सामर्थ्य भी उनमें नित्य है क्योंकि यह गुण गुणी में समवाय सम्बन्ध से है।

चौथा प्रश्न—मनुष्य और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है? विद्याज्ञान से मनुष्य ईश्वर हो सकता है या नहीं? जीवात्मा और परमात्मा में क्या सम्बन्ध है और जीवात्मा और परमात्मा दोनों नित्य हैं और जो दोनों चेतन हैं तो जीवात्मा परमात्मा के आधीन है या नहीं? यदि है, तो क्यों है?

उत्तर—मनुष्य और ईश्वर का राजा-प्रजा, स्वामी-सेवकादि सम्बन्ध है। अल्पज्ञान होने से जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता। जीव और परमात्मा में व्याप्य-व्यापकादि सम्बन्ध है। जीवात्मा परमात्मा के आधीन सदा रहता है परन्तु कर्म करने में नहीं किन्तु पाप कर्मों के फलभोग में वह ईश्वर की व्यवस्था के आधीन रहता है तथापि दुःख भोगने में स्वतन्त्र नहीं है। चूंकि परमेश्वर अनन्त-सामर्थ्य-युक्त है और जीव अल्प सामर्थ्य वाला है अतः उसका परमेश्वर के आधीन होना आवश्यक है।

पांचवाँ प्रश्न—आप संसार की रचना और प्रलय को मानते हैं या नहीं? और जब प्रथम सृष्टि हुई तो आदि सृष्टि में एक या बहुत उत्पन्न हुए? जब कि इनमें कर्मादिक की कोई विशेषता न थी तब परमेश्वर ने कुछ मनुष्यों को ही वेदोपदेश क्यों किया। ऐसा करने से परमेश्वर पर पक्षपात का दोष आता है।

उत्तर—संसार की रचना और प्रलय को हम मानते हैं। सृष्टि प्रवाह से अनादि है, सादि नहीं। क्योंकि ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि और सत्य हैं। जो ऐसा नहीं मानते उनसे पूछना चाहिये कि प्रथम ईश्वर निकम्मा और उसके गुण, कर्म, स्वभाव निकम्मे थे। जैसे परमेश्वर अनादि है, वैसे जगत् का कारण जीव भी अनादि है क्योंकि बिना किसी वस्तु के उससे कुछ कार्य्य होना संभव नहीं। जैसे इस कल्प की सृष्टि के आदि में बहुत स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए थे वैसे ही पूर्व कल्प की सृष्टि में उत्पन्न थे और आगे की कल्पान्त सृष्टियों में भी उत्पन्न होंगे। कर्मादिक भी जीव के अनादि हैं। चार मनुष्यों की आत्मा में वेदोपदेश

करने में यह हेतु है कि उनके सदृश या अधिक पुण्यात्मा जीव कोई भी नहीं थे। इसमें परमेश्वर में पक्षपात कुछ भी नहीं आ सकता।

छठा प्रश्न—आपके मतानुसार न्यूनाधिक कर्मानुसार फल होता है तो मनुष्य स्वतन्त्र कैसे हैं? परमेश्वर सर्वज्ञ है तो उसको भूत, भविष्यत्, वर्तमान का ज्ञान है अर्थात् उसको यह ज्ञान है कि कोई पुरुष किसी समय में कोई कर्म करेगा और परमेश्वर का यह ज्ञान असत्य नहीं होता क्योंकि वह सत्यज्ञान वाला है अर्थात् वह पुरुष वैसा ही कर्म करेगा जैसा कि परमेश्वर का ज्ञान है तो कर्म इसके लिए नियत हो चुका तो जीव स्वतन्त्र कैसे है?

उत्तर—कर्म के फल न्यूनाधिक कभी नहीं होते क्योंकि जिसने जैसा और जितना कर्म किया हो उसको वैसा और उतना ही फल मिलना न्याय कहलाता है। अधिक न्यून होने से ईश्वर में अन्याय आता है।

हे आर्यो! ईश्वर के ज्ञान में भूत, भविष्यत् काल का सम्बन्ध भी कभी होता है। क्या ईश्वर का ज्ञान होकर न हो और न होकर होने वाला है। जैसे ईश्वर को हमारे आगामी कर्म्मों के होने का ज्ञान है वैसे मनुष्य अपने स्वाभाविक गुण कर्म साधनों के नित्य होने से सदा स्वतन्त्र हैं परन्तु अनिच्छित दुःखरूप पापों का फल भोगने के लिये ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र होते हैं। जैसा कि राजा की व्यवस्था में चोर और डाकू पराधीन हो जाते हैं वैसे उन पापपुण्यात्मक कर्मों के दुःख-सुख होने का ज्ञान मनुष्य को प्रथम नहीं है। क्या परमेश्वर का ज्ञान हमारे किये हुए कर्म्मों से उल्टा है। जैसे वह अपने ज्ञान में स्वतन्त्र है वैसे ही सब जीव अपने कर्म करने में स्वतन्त्र हैं।

सातवाँ प्रश्न—मोक्ष क्या पदार्थ है?

उत्तर—सब दुष्ट कर्मों से छूटकर सब शुभ कर्म्म करना जीवन्मुक्त और सब दुःखों से छूटकर आनन्द से परमेश्वर में रहना, यह मुक्ति कहलाती है।

आठवां प्रश्न—धन बढ़ाना अथवा शिल्पविद्या व वैद्यकविद्या से ऐसा यन्त्र अर्थात् कला तथा औषधि निकालना जिसमें मनुष्य को इन्द्रियजन्य सुख प्राप्त हो अथवा पापी मनुष्य जो रोगग्रस्त हो औषध्यादि से नीरोग करना धर्म है या अधर्म है?

उत्तर—न्याय से धन बढ़ाने, शिल्पविद्या करने, परोपकार बुद्धि से यन्त्र वा औषधि सिद्ध करने से धर्म और अन्याय करके करने से अधर्म होता है। धर्म से आत्मा, मन, इन्द्रिय और शरीर को सुख प्राप्त हो तो धर्म और जो अन्याय से हो तो अधर्म होता है। जो पापी मनुष्य को अधर्म से छुड़ाने और धर्म में प्रवृत्त करने के लिए औषधि आदि से रोग छुड़ाने की इच्छा हो तो धर्म, इससे विपरीत करने से अधर्म होता है।

नववां प्रश्न—तामस भोजन (मांस) खाने से पाप है या नहीं? यदि पाप है तो वेद और आप्त ग्रन्थों में हिंसा करना यज्ञादिकों में विहित है और भक्षणार्थ हत्या करना क्यों लिखा है?

उत्तर—मांस खाने में पाप है। वेदों तथा आप्त ग्रंथों में कहीं भी यज्ञादि के लिये पशु-हिंसा करना नहीं लिखा है। गौ, अश्व, अजमेध के अर्थ वामियों ने बिगाड़ दिये हैं। उनके सच्चे अर्थ हिंसा करना कहीं भी नहीं लिखा। हां जैसे डाकू आदि दुष्ट जीवों को राजा लोग मारते, बंधन और छेदन करते हैं वैसे ही हानिकारक पशुओं को मारना लिखा है। परन्तु मारकर उनको खाना कहीं भी नहीं लिखा। आजकल तो वामियों ने झूठे श्लोक बनाकर गोमांस का खाना भी बतलाया है जैसे कि मनुस्मृति में इन धूर्तों का मिलाया हुआ लेख है कि गोमांस का पिंड देना चाहिये। क्या कोई पुरुष ऐसे भ्रष्ट वचन मान सकता है?

दशवाँ प्रश्न—जीव का क्या लक्षण है?

उत्तर—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान यह जीव का लक्षण न्याय-शास्त्र में लिखा है।

ग्यारहवां प्रश्न—सूक्ष्म नेत्रों से ज्ञात होता है कि जल में अनन्त जीव हैं तो जल पीना उचित है या नहीं?

उत्तर—क्या विद्याहीन लोग अपनी मूर्खता की प्रसिद्धि अपने वचनों से नहीं करा देते? न जाने यह भूल संसार में कब तक रहेगी। जब पात्र और पात्रस्थ जल अन्त वाले हों तो उनमें अनन्त जीव कैसे समा सकेंगे और छान-कर या आँख से देखकर जल का पीना सबको उचित है।

बारहवां प्रश्न—मनुष्य के लिये बहुत स्त्री करना कहां निषेध है? यदि निषेध है तो धर्मशास्त्र में जो यह लिखा है कि यदि एक पुरुष के बहुत स्त्री हों और उनमें एक के पुत्र होने से सब पुत्रवती हैं, यह क्यों लिखा?

उत्तर—मनुष्य के लिये अनेक स्त्रियों के करने का निषेध वेद में लिखा है। संसार में प्रत्येक अच्छा नहीं होता। जो अनेक अधर्मी पुरुष कामातुर होकर अपने विषयसुख के लिये बहुत-सी स्त्री करलेवें तो उनमें सपत्नीभाव (सौकन के भाव) से विरोध अवश्य होता है। जब किसी एक स्त्री के पुत्र हुआ तो कोई विरोध से विषादिक प्रयोग से न मारडाले इसलिये यह लिखा है।

तेरहवां प्रश्न—आप ज्योतिष शास्त्र के फलित ग्रन्थों को मानते हैं या नहीं? और भृगुसंहिता आप्त ग्रन्थ है या नहीं?

उत्तर—हम ज्योतिष शास्त्र के गणित भाग को मानते हैं, फलित

भाग को नहीं। क्योंकि जितने ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थ हैं उनमें फलित का लेश भी नहीं है। जो भृगु सिद्धांत कि जिसमें केवल गणित विद्या है, उसको हम आप्त ग्रन्थ मानते हैं, इतर को नहीं। ज्योतिष शास्त्र में भूत, भविष्यत् काल का सुख-दुःख विदित होना कहीं नहीं लिखा। अनाप्तोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त अर्थात् अप्रमाणित व्यक्तियों की लिखी हुई पुस्तकों के अतिरिक्त।

चौदहवां प्रश्न— ज्योतिषशास्त्र में आप किस सिद्धान्त को आप्तग्रन्थ समझते हैं?

उत्तर— ज्योतिषशास्त्र में जो जो वेदानुकूल ग्रन्थ हैं, उन सबको हम आप्तग्रन्थ जानते हैं, अन्य को नहीं।

पन्द्रहवां प्रश्न—आप पृथिवी पर सुख, दुःख, विद्या, धर्म और मनुष्य संख्या की न्यूनता अधिकता मानते हैं या नहीं? यदि मानते हैं तो आगे इनकी वृद्धि थी या अब है या होगी।

उत्तर—हम पृथिवी में सुखादिकों की वृद्धि किसी की व्यवस्था सापेक्ष होने से अनियत मानते हैं, मध्यावस्था में समान जानो।

सोलहवां प्रश्न—धर्म का क्या लक्षण है और धर्म सनातन है परमेश्वर-कृत अथवा मनुष्यकृत?

उत्तर—जो पक्षपातरहित न्याय कि जिसमें सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग हो, वह धर्म का लक्षण कहलाता है सो सनातन और ईश्वरोक्त और वेदप्रतिपादित है, मनुष्यकल्पित कोई धर्म नहीं।

सत्रहवां प्रश्न—यदि मौहम्मदी या ईसाई मतानुयायी कोई आपके अनुसार है और आपके मत में दृढ़ विश्वासी हो तो आपके मतानुयायी उसको ग्रहण कर सकते हैं या नहीं और उसका पाक किया हुआ (पकाया) भोजन आप और आपके मतानुयायी कर सकते हैं या नहीं?

उत्तर—विना वेदों के हमारा कोई कपोलकल्पित मत नहीं है फिर हमारे मत के अनुसार कोई कैसे चल सकता है। क्या तुमने अन्धेर में गिरकर खाना पीना, मलमूत्र करना, जूती, धोती अंगरखा धारण करना, सोना, उठना, बैठना, चलना धर्म मान रखा होगा। हाय खेद है इन कुमति पुरुषों पर कि जिनके बाहर और भीतर की दृष्टि पर पर्दा पड़ा हुआ है जो कि जूता पहनना या न पहनना धर्म मानते हैं। सुनो और आंख खोलकर देखो कि ये सब अपने अपने देश-व्यवहार हैं।

अठारहवां प्रश्न— आपके मत से विना ज्ञान मुक्ति होती है या नहीं?

यदि कोई पुरुष आपके मतानुसार धर्म पर आरूढ़ हो और अज्ञानी अर्थात् ज्ञान-हीन हो उसकी मुक्ति हो सकती है या नहीं ?

उत्तर—विना परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञान के मुक्ति किसी की न होगी। सुनो भाइयो ! जो धर्म पर आरूढ़ होगा उसको ज्ञान का अभाव कभी हो सकता है वा ज्ञान के विना धर्म पर पूरा स्थिर निश्चय कोई मनुष्य कर सकता है ?

उन्नीसवां प्रश्न—श्राद्धादिक अर्थात् पिंडदानादिक जिसमें पितृतृप्ति के अर्थ ब्राह्मणभोजनादि कराते हैं शास्त्ररीति है या अशास्त्ररीति ? यह यदि अशास्त्ररीति है तो पितृकर्म का क्या अर्थ है और मन्वादिक ग्रन्थों में इनका लेख है या नहीं ?

उत्तर—जीते पितरों की श्रद्धा से सेवा पुरुषार्थ व पदार्थों से तृप्ति करनी श्राद्ध और तर्पण कहलाता है। वह वेदादि शास्त्रोक्त है। भोजनभट्ट अर्थात् स्वार्थियों का लड्डू आदि से पेट भरना श्राद्ध और तर्पण शास्त्रोक्त तो नहीं किन्तु पापों का अनर्थकारक आडम्बर है। जो-जो मनु आदिक ग्रन्थों में लेख है सो वेदानुकूल होने से माननीय है, अन्य कोई नहीं।

बीसवां प्रश्न—कोई मनुष्य यह समझकर कि मैं पापों से मुक्त नहीं हो सकता, आत्मघात करे तो उसको कोई पाप है या नहीं ?

उत्तर—आत्मघात करने में पाप ही होता है और विना भोगे पापाचरण के फल के पापों से मुक्त कोई भी नहीं हो सकता।

इक्कीसवां प्रश्न—जीवात्मा संख्यात हैं या असंख्यात ? कर्म्म से मनुष्य पशु अथवा वृक्षादि योनि में उत्पन्न हो सकता है या नहीं ?

उत्तर—ईश्वर के ज्ञान में जीव संख्यात और जीव के अल्पज्ञान में असंख्यात हैं। पाप अधिक करने से जीव पशु, वृक्षादि योनि में उत्पन्न होता है।

बाईसवां प्रश्न—विवाह करना अनुचित है या नहीं ? और सन्तान करने से किसी पुरुष पर पाप होता है या नहीं ? और होता है तो क्या ?

उत्तर—जो पूर्ण विद्वान् और जितेन्द्रिय होकर सर्वोपकार किया चाहे उस पुरुष वा स्त्री को विवाह करना योग्य नहीं, अन्य सबको उचित है। वेदोक्त रीति से विवाह करके ऋतुगामी होकर सन्तानोत्पत्ति करने में कुछ दोष नहीं। व्यभिचारादि से सन्तान उत्पन्न करने में दोष है क्योंकि अन्यायाचरणों में दोष हुए विना कभी नहीं रह सकता है।

तेईसवां प्रश्न—अपने सगोत्र में सम्बन्ध करना दूषित है या नहीं, यदि है तो क्यों है? सृष्टि के आदि में ऐसा हुआ था या नहीं?

उत्तर—अपने सगोत्र में विवाह करने में दोष यूं है कि इससे शरीर आत्मा, प्रेम बलादि की उन्नति यथावत् नहीं होती, इसलिये भिन्न गोत्रों में ही विवाह सम्बन्ध करना उचित है। सृष्टि के आदि में गोत्र ही नहीं थे फिर वृथा क्यों परिश्रम किया। हां पोपलीला में दक्ष प्रजापति वा कश्यप की एक ही सब सन्तान मानने से पशुव्यवहार सिद्ध होता है। इसको जो माने सो मानता रहे।

चौबीसवां प्रश्न—गायत्री-जाप से कोई फल है या नहीं और है तो क्यों है?

उत्तर—गायत्री-जाप जो वेदोक्त रीति से करे तो फल अच्छा होता है क्योंकि इसमें गायत्री के अर्थानुसार आचरण करना लिखा है। पोपलीला के जप अनर्थरूप फल होने की क्या ही कथा कहना है? कोई अच्छा व बुरा किया हुआ कर्म्म निष्फल नहीं होता है।

पच्चीसवां प्रश्न—धर्म, अधर्म मनुष्य के अन्तरीय भाव से होता है या कर्म के परिणाम से? यदि कोई मनुष्य किसी डूबते हुए मनुष्य को बचाने को नदी में कूद पड़े और वह आप डूब जाये तो उसे आत्मघात का पाप होगा या पुण्य?

उत्तर—मनुष्यों के धर्म और अधर्म भीतर और बाहर की सत्ता से होते हैं कि जिनका नाम कर्म और कुकर्म भी है। जो किसी को बचाने के लिये परिश्रम करेगा और फिर उपकार के लिये जिसका शरीर वियोग ही हो जाये उसको विना पाप पुण्य ही होगा। (लेखराम पृ० ४८७-४६२)

पृथ्वी का आधार

(पुष्कर में एक पण्डित से प्रश्नोत्तर—नवम्बर, १८७८)

एक दिन एक पण्डित महाराज के पास आये। महाराज ने उनसे पूछा कि आपने क्या-क्या ग्रन्थ पढ़े हैं? पण्डित ने कहा भागवत। फिर निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए।

स्वामी जी—पृथ्वी का आधार क्या है?

पण्डित—वासुकि।

स्वामी जी—वासुकि के पिता कौन थे?

पण्डित—काश्यप।

स्वामी जी—काश्यप के पिता कौन थे ?

पण्डित—मरीचि।

स्वामी जी—मरीचि के पिता कौन थे ?

पण्डित—ब्रह्मा।

स्वामी जी—इन तीनों के समय में पृथ्वी का आधार क्या था ?

पण्डित जी इस प्रश्न का उत्तर न दे सके। तब महाराज ने कहा कि "शेषाधारा भूः" प्रलय के पश्चात् परमेश्वर ही शेष रहता है अतः उसका नाम शेष है और परमेश्वर ही पृथ्वी का आधार है। (देवेन्द्रनाथ २। १३७)

तौरेत इञ्जील की अशुद्धियाँ

(पादरी ग्रे मिशनरी से अजमेर में शास्त्रार्थ—२८ नवम्बर, १८७८)

कार्तिक सुदि १३, संवत् १९३५ तदनुसार ७ नवम्बर १८७८ को स्वामी जी अजमेर में पधारे। मंगसिर बदि ४ तदनुसार १४ नवम्बर, सन् १८७८, बृहस्पतिवार से लड़का के चौक में व्याख्यान देना आरम्भ किया। पहले दिन ईश्वर विषय पर व्याख्यान दिया। १५ नवम्बर को ईश्वर विषय समाप्त करके ईश्वरीय-ज्ञान का विषय आरम्भ किया। १७ नवम्बर को भी यही विषय रहा। १८ को फिर ईश्वरीय-ज्ञान पर ही व्याख्यान दे रहे थे। व्याख्यान की समाप्ति पर एक बड़ी सूची तौरेत, इञ्जील तथा कुरान मजीद की अशुद्धियों को पढ़कर सुनाई और कहा कि मैंने यह सूची किसी को चिड़ाने के लिये नहीं सुनाई प्रत्युत इसलिये कि सब लोग पक्षपात रहित होकर विचारें कि जिन पुस्तकों में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं, वह ईश्वरकृत हो सकती हैं या नहीं ? उस दिन सैकड़ों मुसलमान, ईसाई तथा हिन्दू उपस्थित थे। मुसलमान तो कोई न बोला। पादरी ग्रे साहब और डाक्टर हसबैण्ड साहब उपस्थित थे। उनमें से माननीय ग्रे साहब बोले कि व्याख्यान के दिन शास्त्रार्थ नहीं होता। आप इन आक्षेपों को लिखकर हमारे पास भेजिये, मैं उनका उत्तर दूंगा। स्वामी जी ने कहा मैं तो यही चाहता हूँ और सदा मेरी यही इच्छा रहा करती है कि आप जैसे बुद्धिमान् पुरुष मिलकर सत्यासत्य का निर्णय करें। पादरी साहब ने कहा कि सत्य का निर्णय जब होगा कि आप मेरे पास प्रश्न भेजेंगे और मैं उत्तर दूंगा। फिर स्वामी जी ने कहा कि लिखकर दोनों ओर से प्रश्नोत्तर भेजने में काल बहुत लगता है और मनुष्यों को भी इससे लाभ नहीं पहुँचता। इसलिये यही बात अच्छी है कि आप यहीं आवें, मैं प्रश्न करूँ और आप उत्तर दें। तब पादरी

साहब ने कहा कि आप प्रश्न मेरे पास भेज देवें। जब मैं दो-चार दिन में उनको विचार लूंगा तब पीछे उत्तर आपको यहां आकर दूंगा। स्वामी जी ने कहा कि प्रश्न तो मैं नहीं भेजूंगा परन्तु मुझको जहाँ-जहाँ तौरेत और इञ्जील में शंकाएँ हैं उनमें से थोड़े से वाक्य लिखकर भेज दूंगा। उनको जब आप विचार लेंगे तो उन्हीं में से प्रश्न करूंगा, आप उत्तर देना। इतनी बात होने के पश्चात् पादरी साहब चले गये।

उसके दूसरे दिन अर्थात् १९ नवम्बर, सन् १८७८ मंगलवार को स्वामी जी ने तौरेत और इंजील के ६४ वाक्य लिखकर पण्डित भागराम साहब ऐक्स्ट्रा ऐसिस्टैण्ट कमिश्नर अजमेर द्वारा पादरी साहब के पास भेज दिये। कई दिन तक पादरी साहब उनको विचारते रहे। उनके अच्छी प्रकार विचार लेने के पूरे दस दिन पश्चात् अर्थात् २८ नवम्बर, सन् १८७८ बृहस्पतिवार तदनुसार मंगसिर सुदि ४, संवत् १९३५ शास्त्रार्थ का दिन नियत हुआ।

उस दिन शास्त्रार्थ देखने और सुनने के लिए सर्वत्र विज्ञापन दे दिया गया था, इसलिए बहुत अधिक संख्या में लोग सुनने के लिए आये। सर्दार बहादुर मुंशी अमीचन्द साहब जज, पंडित भागराम साहब ऐक्स्ट्रा ऐसिस्टैण्ट कमिश्नर, सर्दार भगतसिंह साहब इञ्जीनियर आदि सरकारी अधिकारी भी सभा में सम्मिलित थे।

नियत समय पर स्वामी जी चारों वेदों के पुस्तक साथ लेकर आये। पादरी ग्रे साहब और डाक्टर हसबैण्ड साहब भी पधारे। बाबू रामनाथ हेडमास्टर राजपूत स्कूल जयपुर, बाबू चन्दूलाल वकील गुडगांवा, हाफिज मौहम्मद हुसैन दारोगा चुंगी अजमेर—ये तीन लेखक नियत हुए। प्रथम स्वामी जी ने कहा कि मैंने कितने स्थानों पर पादरी लोगों से बातचीत की है, कभी किसी प्रकार की गड़बड़ नहीं हुई। आज भी मैं जानता हूँ कि पादरी साहब से वार्तालाप निर्विघ्नता से पूरा होगा। फिर पादरी साहब ने भी निर्विघ्नता से बातचीत होने की आशा प्रकट की और कहा कि स्वामी जी ने जो वाक्य लिखकर हमारे पास भेजे हैं वे बहुत हैं और समय केवल दो या ढाई घण्टे का है इसलिये इन आक्षेपों पर दो चार ही प्रश्नोत्तर होना ठीक है। इसके पश्चात् शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

बोलते समय इन तीन लेखकों को स्वामी जी और पादरी साहब क्रमशः लिखवाते जाते थे।

स्वामी जी—तौरेत उत्पत्ति की पुस्तक पूर्व १ आयत २ में लिखा है कि पृथिवी बेडौल है। अब देखना चाहिए कि परमेश्वर सर्वज्ञ है, सब विद्या उसमें

पूरी हैं। उसके विद्या के काम में बेडौलता कभी नहीं हो सकती क्योंकि जीव को पूरी विद्या और सर्वज्ञता नहीं है इसलिये जीव के काम में बेडौलता आ सकती है, ईश्वर के काम में नहीं।

पादरी—यहाँ अभिप्राय बेडौल से नहीं है बल्कि उजाड़ से है। अयूब की पुस्तक अध्याय २ आयत २४ में है कि बिना मार्ग जंगल में आत्मा नहीं भ्रमता है। यहां जिस शब्द का अर्थ जंगल है उसी का अर्थ वहाँ बेडौल है।

स्वामी जी— इससे पहली आयत में यह बात आती है कि आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा और पृथिवी बेडौल सूनी थी, गहराव पर अन्धेरा था। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उजाड़ का अर्थ यहां नहीं ले सकते क्योंकि कहा था कि सूनी थी। बेडौल के अर्थ उजाड़ के होते तो सूनी थी, इस शब्द की कुछ आवश्यकता नहीं थी और जबकि ईश्वर ने ही पृथिवी को रचा है सो प्रथम ही अपने ज्ञान से डौल वाली क्यों नहीं रच सकता था?

पादरी साहब—दो शब्द एक ही अर्थ के सब भाषाओं में एक दूसरे के पीछे होकर आते हैं जैसे इबरानी में तोहो बोहो, फार्सी में वूदो बाश, ये सब एक ही अर्थ के वाची हैं। इसी प्रकार उर्दू में यह अर्थ ठीक है कि पृथिवी उजाड़ और सुनसान थी।

स्वामी जी इस बात पर और प्रश्न करना चाहते थे इतने में पादरी साहब ने कहा कि एक-एक वाक्य पर दो-दो प्रश्न और दो-दो उत्तर होने चाहियें, क्योंकि वाक्य बहुत हैं तो सब प्रश्न आज न हो सकेंगे। स्वामी जी ने कहा यह अवश्य नहीं है कि आज ही सब वाक्यों पर प्रश्नोत्तर हो जायें। कुछ आज होंगे फिर इसी प्रकार दो-चार दिन अथवा जबतक यह वाक्य पूरे न हों तबतक प्रश्नोत्तर होते रहेंगे। पादरी साहब ने इस बात को स्वीकार नहीं किया तब स्वामी जी ने कहा कि और अधिक न हो तो एक वाक्य पर दस बार प्रश्न होने चाहियें। पादरी साहब ने यह भी स्वीकार न किया। स्वामी जी ने फिर कहा कि एक-एक वाक्य पर कम से कम तीन बार प्रश्नोत्तर होने ही चाहियें। इसमें फिर पादरी साहब ने कहा कि हमको दो बार से अधिक प्रश्नोत्तर करना कदाचित् स्वीकार नहीं है। तब स्वामी जी ने कहा कि हमको इसमें कुछ हठ नहीं है, सभा की जैसी सम्मति हो वैसा किया जावे। स्वामी जी की इस बात पर कोई कुछ न बोला परन्तु डाक्टर हम्बैण्ड साहब ने कहा कि यदि सभा से प्रत्येक विषय में पूछेंगे तो चार सौ मनुष्य हैं उनमें से किस-किस से पूछा जायेगा। स्वामी जी ने कहा कि यदि पादरी को तीन प्रश्न करना स्वीकार नहीं है तो जाने दो हम दो ही करेंगे क्योंकि इतने मनुष्य विज्ञापन देखकर इकट्ठे हुए हैं।

जो यहां कुछ बातचीत न हुई तो अच्छा नहीं। फिर दूसरे वाक्य पर प्रश्न किया।

स्वामी जी—(वही पर्व वही आयत) और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था। पहली आयत से विदित होता है कि ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को रचा। यहां जल की उत्पत्ति नहीं कही तो जल कहां से हो गया। ईश्वर आत्म-स्वरूप है वा जैसे कि हम स्वरूप वाले हैं वैसा। जो वह शरीर वाला है तो उसका सामर्थ्य आकाश और पृथिवी बनाने का नहीं हो सकता क्योंकि शरीर वाले के शरीर के अवयवों से परमाणु आदि को ग्रहण करके रचना में लाना असम्भव है और वह व्यापक भी नहीं हो सकता। जब उसका आत्मा जल पर डोलता था तब उसका शरीर कहां था ?

पादरी साहब—जब-जब पृथिवी को सृजा तो पृथिवी में जल भी आ गया। दूसरी बात का उत्तर यह है कि परमेश्वर आत्मरूप है। तौरेत के आरम्भ से इञ्जील के अन्त तक परमेश्वर आत्मरूप कहलाया।

स्वामी जी—ईश्वर का वर्णन तौरेत से लेकर इञ्जील पर्यन्त बहुत ठिकानों में ऐसा ही है कि वह किसी प्रकार का शरीर भी रखता है क्योंकि आदम की बाड़ी को बनाया, वहां आना फिर ऊपर चढ़ जाना, सनाई पर्वत पर जाना, मूसा इब्राहीम और उनकी स्त्री सरः से बातचीत करना, डेरे में जाना, याकूब से मल्लयुद्ध करना इत्यादि बातों से पाया जाता है कि अवश्य किसी प्रकार का शरीर वह रखता है और उसी क्षण अपना शरीर बना लेता है।

पादरी साहब—ये सब बातें इस आयत से कुछ सम्बन्ध नहीं रखतीं केवल अनजानपने से कही जाती हैं। इसका यही उत्तर है कि यहूदी, इसाई और मुसलमान जो तौरेत को मानते हैं इसी पर एकमत हैं कि खुदा रूह है।

स्वामी जी—(पर्व वही, आयत २६) तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें। इससे स्पष्ट पाया जाता है कि ईश्वर भी आदम के स्वरूप जैसा था। जैसा कि आदम आत्मा और शरीर-युक्त था, ईश्वर को भी इस आयत से वैसा ही समझना चाहिए। जब वह शरीर जैसा स्वरूप नहीं रखता तो अपने स्वरूप में आदम को कैसे बना सका ?

पादरी साहब—इस आयत में शरीर का कुछ कथन नहीं। परमेश्वर ने आदम को पवित्र, ज्ञानवान् और आनन्दित रचा। वह सच्चिदानन्द ईश्वर है और आदम को अपने स्वरूप में बनाया। जब आदम ने पाप किया तो परमेश्वर के स्वरूप से पतित हो गया। जैसे पहले प्रश्नोत्तर के २४ और २५ प्रश्न से विदित होता है (कोलोसियों के पत्रे तीसरा पर्व ९ और १० आयत)। एक दूसरे

से झूठ मत बोलो क्योंकि तुमने पुराने फैशन को उसके कार्य्यों समेत उतार फेंका है और नये फैशन को जो ज्ञान में अपने सिरजनहारे के स्वरूप के समान नये बन रहे हैं, पहना है। इससे विदित होता है कि ज्ञान और पवित्रता में परमेश्वर के समान बनाया गया और नये सिरे से हम लोगों को बनाया (करन्तियों अध्याय १७, आयत १९) और प्रभु ही आत्मा है और जहां कहीं प्रभु का आत्मा है वहीं निर्विघ्नता है और हम सब विना पर्दा प्रभु के तेज को दर्पण में देख-देख प्रभु के आत्मा के द्वार पर तेज से उसके स्वरूप में बदलते जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि विश्वासी लोग बदल के फिर परमेश्वर के स्वरूप में बन जाते हैं अर्थात् ज्ञान, पवित्रता और आनन्द में क्योंकि धर्मी होने से मनुष्य के शरीर का रूप नहीं बदलता है।

स्वामी जी—परमात्मा के सदृश आदम के बनने से सिद्ध होता है कि ईश्वर भी शरीर वाला होना चाहिए। जो परमेश्वर ने आदम को पवित्र और आनन्द मे रचा था तो उसने परमेश्वर की आज्ञा क्यों तोडी और जो तोड़ी तो विदित होता है कि यह ज्ञानवान् नहीं था। और जब उसने ज्ञान के पेड का फल खाया तब उसकी आंख खुल गई। इससे जाना जाता है कि वह ज्ञानवान् पीछे से हुआ। जो पहले ही ज्ञानवान् था तो फल खाने के पीछे ज्ञान हुआ, यह बात नहीं बन सकती और प्रथम परमेश्वर ने उसको आशीर्वाद दिया था कि तुम फलो-फलो, आनन्दित रहो और फिर जब उसने ईश्वर की आज्ञा के विना उस पेड़ का फल खाया तब उसकी आँखें खुलने से उसको ज्ञान हुआ कि हम नंगे हैं। गूलर के पत्ते अपने शरीर पर पहने। अब देखना चाहिये कि जो वह ईश्वर के समान ज्ञान में और पवित्रता में होता तो उसको नंगा होना, क्यों नहीं जान पड़ता। क्या उसको इतनी भी सुध नहीं थी। जब परमेश्वर के समान वह ज्ञानी, पवित्र और आनन्दित था तो उसको सर्वज्ञ और नित्य शुद्ध आनन्दित रहना चाहिये और उसके पास कुछ दुःख भी कभी न आना चाहिये क्योंकि वह परमेश्वर के समान है। इन ऊपर कही तीनों बातों में तो वह पतित किसी प्रकार से नहीं हो सकता और जो पतित हुआ तो परमेश्वर के समान नहीं हुआ क्योंकि परमेश्वर ज्ञानादि गुणों मे पतित कभी नहीं होता। फिर बतलाइये कि जैसे आदम प्रथम ज्ञानादि तीनों गुणों में परमेश्वर के समान होके फिर उनसे पतित हो गया वैसे ही विश्वासी लोग ज्ञानी, पवित्र और अनन्दित होंगे वा अधिक कम। जो वैसे ही होंगे तो फिर जैसे आदम पतित हो गया वैसे ही विश्वासी भी हो जायेंगे क्योंकि वह तीनों बातों में परमात्मा के समान होकर पतित हो गया था।

पादरी साहब—कई बातों में पहला उत्तर पर्याप्त है और रहा यह कि

यदि आदम पवित्र था तो आज्ञा क्यों तोड़ी । उत्तर यह है कि वह पहले पवित्र था, आज्ञा तोड़ के पापी हुआ। फिर यह कहा कि ज्ञानवान् पीछे से हुआ। यह बात नहीं है जब भले बुरे के ज्ञान के पेड़ का फल खाया तब बुरे जान पड़े, पहले न जानता था, आँखें खुल गईं और उसको जान पड़ा कि मैं नंगा हूँ। इसका उत्तर यह है कि पापी होके उसको लज्जा आने लगी। फिर यह कि यदि वह परमात्मा के समान होता तो पतित न होता। इसका उत्तर यह है कि वह परमात्मा के समान बनाया गया न उसके तुल्य। यदि परमात्मा के तुल्य होता तो पाप में न गिरता। अन्त में जो पूछा कि विश्वासी लोग आदम से अधिक पवित्र हो जायेंगे इसका उत्तर यह है कि अधिक और कम पवित्र होने में प्रश्न नहीं है किन्तु स्वरूप के विषय में है कि परमेश्वर का रूप शरीर जैसा था वा नहीं। यदि वह स्वरूप जिसका कथन होता है शारीरिक होता तो धर्मी लोग जब परमेश्वर के स्वरूप में नये सिरे से नहीं जाते हैं तो अपने शरीर को नहीं बदल डालते।

स्वामी जी—(तौरेत का पर्व २, आयत ३) उसने सातवें दिन को आशीर्वाद दिया और ठहराया। ईश्वर को सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी, सच्चिदानन्द स्वरूप होने से परिश्रम जगत् के रचने में कुछ भी नहीं हो सकता फिर सातवें दिन विश्राम करने की क्या आवश्यकता ? और विश्राम किया तो छः दिन तक बड़ा परिश्रम करना पड़ा होगा। और सातवें दिन को आशीर्वाद दिया तो छः दिनों को क्या दिया। हम नहीं कह सकते कि ईश्वर को एक क्षण भी जगत् के रचने में लगे और कुछ भी परिश्रम हो।

पादरी साहब—अब समय हो चुका, इससे अधिक हम नहीं ठहर सकते और बोलते समय लिखना पड़ता है इससे देर बहुत लगती है। इसलिये हम कुछ नहीं करना चाहते जो बोलते समय लिखा न जाये तो हम कर सकते हैं। यदि स्वामी जी को लिखकर प्रश्नोत्तर करना है तो हमारे पास प्रश्न लिखकर भेज दें। हम लिखकर उत्तर देंगे।

इस पर डाक्टर हसबैण्ड साहब के कहने से सर्दार बहादुर अमीचन्द साहब ने कहा कि मेरी भी यह सम्मति है कि प्रश्न लिखकर पत्र द्वारा किया करें। आज की भांति किये जायेंगे तो छः महीने तक भी पूरे न होंगे।

स्वामी जी ने कहा कि प्रश्नोत्तर के लिखे विना बहुत हानि है। जैसे अभी थोड़ी देर के पश्चात् अपने में से कोई अपनी कही हुई बात के लिए कह सकता है कि मैंने यह बात नहीं कही। दूसरे इस प्रकार बातचीत होने में और लोगों को यथार्थ छुपाकर प्रकट नहीं कर सकते और यदि कोई छुपावे भी तो जिसके जो मे

जो आवे सो छुपा सकता है और जो मकान पर प्रश्नोत्तर लिख-लिख किया करें तो इनमें काल बहुत लगेगा और जो कहा गया कि इस प्रकार छः मास में पूरा न होगा। सो मैं कहता हूँ कि इसमें छः मास का कुछ काम नहीं है। हां जो मकान पर पत्र द्वारा करेंगे तो तीन वर्ष में भी पूरा न होगा और मनुष्य जो मेरे सामने सुन रहे हैं वे नहीं सुन सकेंगे इसलिए यही अच्छा है कि सबके सामने प्रश्नोत्तर किये जावें और लिखाया भी जावें।

पादरी साहब ने कहा कि आपने यहाँ प्रश्नोत्तर करने में लोगों के सुनने का लाभ दिखलाया परन्तु मैं जानता हूँ कि आज की बातों को जो यहाँ इतने लोग बैठे हैं, उनमें से थोड़े ही समझे होंगे। पादरी साहब की यह बात सुन कर हाफिज मौहम्मद हुसैन और अन्य मुसलमान लोग कहने लगे कि हम कुछ भी नहीं समझे। इस पर पादरी साहब ने कहा कि देखिए लिखने वाला ही नहीं समझा तो और कौन समझ सकता है पर स्वामी जी ने दो दूसरे लिखने वाले थे उनसे पूछा कि तुम समझे वा नहीं ? उन्होंने कहा कि हां हम बराबर समझे, हमने जो कुछ लिखा है उसको अच्छी प्रकार कह सकते हैं। तब स्वामी जी ने कहा कि दो लिखने वाले तो समझे और एक नहीं समझा। सारांश यह कि पादरी साहब दूसरे दिन शास्त्रार्थ का लिखा जाना स्वीकार नहीं किया।

स्वामी जी ने पादरी साहब से कहा कि आज के प्रश्नोत्तर के तीन परत लिखे गये हैं आप उन पर हस्ताक्षर कर दीजिये और मैं भी कर देता हूँ। और प्रधान सभा से भी कराकर एक प्रति आपके पास और एक मेरे पास और एक प्रधान के पास रहेगी।

पादरी साहब ने कहा कि हम ऐसी बातों पर हस्ताक्षर करना नहीं चाहते। तत्पश्चात् सभा उठ खड़ी हुई और सब लोग अपने घरों को चले गये परन्तु स्वामी जी महाराज, सर्दार बहादुर अमीचन्द साहब, पंडित भागराम साहब, सर्दार भगतसिंह जी के मकान पर जो सभा के मकान के पास था, ठहरे। उस समय शास्त्रार्थ की दो कापियों पर जो स्वामी जी के पास रही थीं (क्योंकि एक पादरी साहब साथ ले गये थे) उन दोनों सज्जनों ने हस्ताक्षर भी कर दिये और सब अपने मकानों को गये।

दूसरे दिन अर्थात् २६ नवम्बर, सन् १८७८ को पादरी साहब ने स्वामी जी के पास पत्र लिखकर भेजा कि आज आप प्रश्नोत्तर करेंगे या नहीं यदि करना हो तो किया जाये परन्तु लिखा न जाये और लिखना हो तो पत्र द्वारा किया जाये।

स्वामी जी ने इसके उत्तर में लिख भेजा कि प्रश्नोत्तर सबके सामने किये

जावें और लिखे भी जावें। इस प्रकार हमको स्वीकार है अन्यथा नहीं क्योंकि और प्रकार करने में बहुत हानि है जो कि हम पहले लिख चुके हैं। अब यदि आपको लिखकर प्रश्नोत्तर करना हो तो मुझको लिखिये। मैं जब तक आप कहें यहाँ रहूँ और यदि आपको इस प्रकार न करना हो तो सर्दार भगतसिंह जी को लिख भेजो कि अब शास्त्रार्थ न होगा ताकि उन्होंने जो तम्बू आदि का प्रबन्ध कर रखा है उसे उठा लेवें। पादरी साहब ने इसको बड़ा सुअवसर जाना और प्रसन्नता से सर्दार साहब को इसी प्रकार कहला भेजा। उन्होंने सब सामान उठवा दिया। इसके पश्चात् स्वामी जी तीन चार दिन और अजमेर में रहे। चौथे दिन दूसरी दिसम्बर, सन् १८७८ को मसूदा की ओर प्रस्थान कर गये।

(लेखराम पृ० ६८१—६८६)

विविध प्रश्न

(मौलवी मुहम्मद मुराद अली साहब प्रोपराइटर 'राजपूतानागजट' अजमेर से वार्तालाप का वृतान्त—नवम्बर १८७८ ई०)

"मुझे श्री महाराज स्वामी जी जगतारक से पाँच बार मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रथमबार सन् १८७८ में जब कि मुंशी अमीचन्द साहब सरदार भूतपूर्व जुडीशियल असिस्टेंण्ट कलक्टर ने प्रशंसनीय महाराज को यहां बुलाया था, रात को सेठ गजमललूथ की हवेली जो चौका कड़क्का में है, में प्रशंसनीय महाराज ने उपदेश दिया। उस दिन प्रथम तो लगभग दो बजे दिन को भेंट हुई थी। चूंकि स्वामी जी महाराज की प्रसिद्धि समस्त देशों में फैल रही थी और यहाँ आप प्रथम बार ही पधारे थे इसलिए मैं एक प्रश्नकर्त्ता के रूप में आपकी सेवा में गया। मेरे साथ एक सेवक और हिन्दू जो दीवान बूटासिंह यहाँ के कम्पोजीटर था, गये और बैठते ही महाराज जी से मैंने ये प्रश्न किए ?

१. आत्मा क्या वस्तु है।

२. बहुत से मत शरीर के नष्ट होने के पश्चात् शुभ कर्मों के कारण मनुष्य का मुक्त होना स्वीकार करते हैं, वास्तव में यह मोक्ष किस वस्तु का नाम है ?

३. बार-बार जन्म लेने का क्या कारण है ? यदि इस कथन को माना जाये कि पाप करने से मनुष्य बार-बार जन्म लेने का अधिकारी है तो मेरे विचार में मनुष्य का स्वभाव यही है कि जब तक ज्ञान प्राप्त न हो वह अवश्य पाप किया करता है, इससे सिद्ध होता है कि स्वयं ईश्वर की ही इच्छा से मनुष्य बार-बार

जन्म लेने का अधिकारी ठहरता है। यदि ईश्वर की इच्छा न हो तो मनुष्य माँ के पेट से ही ऐसा उत्पन्न हो कि पवित्रता प्राप्त करके ताकि पाप न करे।

४. बुराई या तो शैतान से उत्पन्न हुई या खुदा से या अपनी ही इच्छा से। यदि अपनी इच्छा से उत्पन्न हुई है तो विदित हुआ है कि ईश्वर के अतिरिक्त भी कोई कारण बुराई या भलाई का ऐसा है जो स्वयं ही उत्पन्न होने की शक्ति रखता है। खुदा के बस का नहीं। और जो खुदा ही ने इस बुराई को उत्पन्न किया तो विदित हुआ कि बुराई का आविष्कारक भी परमेश्वर है और चूँकि उसकी उत्पन्न की हुई कोई वस्तु श्रेष्ठता से रहित नहीं और न निकम्मी है, इसलिए इससे यह माना पड़ेगा कि स्वयं खुदा ने मनुष्य के लिए बुराई उत्पन्न की तो फिर अब बुराई का दण्ड क्यों ?

इन प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी महाराज ने कई प्रकार से देर तक दिये। प्रश्न नं० १ और ४ का उत्तर ऐसा युक्तियुक्त था कि मेरा संतोष हो गया था और प्रश्न नं०२ और ३ के विषय में उत्तर देने का वचन दिया था। उसी दिन सायंकाल स्वामी जी ने उपदेश दिया। अजमेर के असंख्य सामान्य और विशेष व्यक्ति एकत्रित थे। चूँकि उपदेश करने में दो चार वाक्य कहने के पश्चात गिलास में से पानी के घूंट लेते थे दूसरे दिन मैंने उसके विषय में भी आपसे निवेदन किया कि यह रीति तो अंगरेज पादरियों की है आप क्यों करते हैं? कहा कि यह वैद्यक से सम्बद्ध बात है। मनुष्य दुर्बल है, कहते-कहते चित्त में उत्तेजना आ जाती है। पानी के घूट लेने से वह दूर हो जाती है इसमें क्या बुरा है ?

उसी दिन स्वामी जी महाराज की गोरक्षा के विषय में चिरकाल तक मुझ से बातें हुई ? चूँकि मेरे विचार पहले ही से गोहत्या के विरुद्ध हैं, मैंने निरन्तर लेखों में और विशेष पत्रिका में यह बात भली भांति सिद्ध कर दी है कि भारत जैसे देश में गाय मारना बिल्कुल मूर्खता और नासमझी है, और यह कि गाय मारने में मुसलमानी नहीं धरी हुई है। इसलिए स्वामी जी मुझ से बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि आज से हम तुमको अपने विचारों का एक स्तम्भ समझते हैं और यह भी कहा कि तुम जो पत्रिका गो रक्षा के बारे में लिखो उसकी एकप्रतिलिपि हमको भी दिखलाना। उस समय एक चित्र भी स्वामी जी ने अपना मुझ को दिया।

इसके पश्चात् जब स्वामी जी उदयपुर गये तब भी भेंट हुई, जोधपुर में गये तब भी हुई थी। मेरे विचार में स्वामी जी महाराज एक महान् पुरुष थे और उनके मरने से भारतवर्ष को बहुत बड़ा धक्का लगा है।

हस्ताक्षर—मुराद अली (लेखराम पृ० ४२९-४३०)

मूर्तिपूजा

(मसूदा में अश्वशाला के अध्यक्ष शिवराम से प्रश्नोत्तर—दिसम्बर, १८७८)

एक दिन रामबाग के हनुमान् के मन्दिर में रियासत की अश्वशाला का अध्यक्ष शिवराम आया। उसने हनुमान् की मूर्ति के आगे दण्डवत् की और हनुमान् की स्तुति में कुछ श्लोक पढ़े। उसने महाराज को प्रणाम न किया। महाराज ने उससे कहा कि तूने हनुमान् के आगे हाथ जोड़े, दण्डवत् की और श्लोक भी पढ़े परन्तु वह तुझसे बोला तक नहीं। देख हम तुझे ब्राह्मण समझ कर बिना बुलाये ही तुझसे बोलते हैं और हनुमान् तेरे बुलाने पर भी नहीं बोलता। वह बोला कि हनुमान् जी का बोलना हम समझते हैं और लोग नहीं समझते महाराज ने कहा कि तेरे हनुमान् हमसे डरते हैं जो तुझसे गुप्त बोलते हैं। इसके पश्चात् उसने कुछ न कहा। (देवेन्द्रनाथ २ ! १४४, लेखराम पृ० ५४२)

नवीन वेदान्त

(नवीन वेदान्ती साधु से रिवाड़ी में प्रश्नोतर—जनवरी, १८७९)

जब स्वामी जी रिवाड़ी में थे तो एक साधु ने उनसे कहा कि मैं ब्रह्म हूँ।

स्वामी जी प्रथम तो मौन रहे फिर कहा कि ईश्वर ने सूर्य्य, चन्द्र, पृथिवी बनाया। तू एक हाथ भर पृथिवी इधर (वायु मंडल में) रचकर यदि हम को बतलावे तो हम तुझको परमेश्वर मानें।

सब लोग हंस पड़े और वह साधु मौन हो गया। (लेखराम पृ० ४३५)

हिन्दू मुसलमानों के तीर्थ

(वकारअली बेग से कुम्भ मेला हरिद्वार में प्रश्नोत्तर—फरवरी से अप्रैल, १८७९)

सन् १८७९ में होने वाले कुम्भ के मेले पर एक दिन नजफअली तहसीलदार रुड़की स्वामी जी के पास आये और व्याख्यान सुनने लगे। व्याख्यान सुनकर कहा कि आजतक कुछ सन्देह था परन्तु अब अच्छी प्रकार सिद्ध हो गया जितना ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान संस्कृत में है उतना दूसरी भाषा में नहीं। दूसरी बार वकार अली बेग डिप्टी मैजिस्ट्रेट को साथ लेकर आये। डिप्टी साहब तम्बू के द्वार में और तहसीलदार साहब भीतर आ गये और डिप्टी साहब से कहा कि स्वामी जी बड़े सिद्ध पुरुष हैं, मैं भी उनका सेवक हूँ। डिप्टी साहब ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि यह हरिद्वार और हर की पौड़ी क्या है?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि हर की पैड़ी तो नहीं किन्तु हाड़ की पैड़ी है क्योंकि हजारों मन हड्डियाँ यहाँ पड़ती हैं ।

डिप्टी साहब ने कहा कि यदि इस गंगा में स्नान का माहात्म्य है तो इसमें ही क्या विशेषता है कि पैड़ी पर स्नान दान करें ?

स्वामी जी ने कहा कि यह बात पंडों की बनाई हुई है क्योंकि यदि लोग गंगा में प्रत्येक स्थान पर स्नान करने लगें तो पंडा जी दक्षिणा कहां से लें। आपके यहां अजमेर में भी यही बात है। मुजाविर (कब्र के समीप रहने वाला) कहते हैं कि न इधर न उधर चढ़ाओ बल्कि इन ईंटों में चढ़ाओ, ख्वाजा साहब इन ईंटों में घुसे हैं। इस पर वे निरुत्तर हो गये। (लेखराम पृ० ६११)

एक साथ खानपान

(**कुम्भ मेला हरिद्वार में यवनों से प्रश्नोत्तर**—फरवरी से अप्रैल, १८७९)

सन् १८७९ में होने वाले कुम्भ के मेले पर जब स्वामी जी मायापुर हरिद्वार में तम्बू लगाकर ठहरे हुए थे तो उम्मीदखां और पीरजी इब्राहीम नामक दो यवनों ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि हमने सुना है कि आप मुसलमानों को भी आर्य्य बना लेते हैं।

स्वामी जी ने कहा कि हम वास्तव में आर्य्य बना लेते हैं। आर्य्य के अर्थ श्रेष्ठ और सत्यमार्ग पर चलने वाले के हैं। जब आप सत्यधर्म स्वीकार करें तब आर्य्य हो गये।

उन्होंने कहा कि हमारे साथ मिलकर खाओगे ?

स्वामी जी ने कहा कि हमारे यहां केवल उच्छिष्ट का त्याग है, हम एक दूसरे के साथ इकट्ठा नहीं खाते।

मुसलमानों ने कहा कि एक स्थान पर खाने से प्रेम बढ़ता है।

स्वामी जी ने कहा कि कुत्ते भी तो मिलकर एक स्थान पर खाते हैं परन्तु खाते-खाते आपस में लड़ने लगते हैं।

इस पर वे मौन हो गये। (लेखराम पृष्ठ ६०१)

मूर्त्तिपूजा

(**मूला मिस्त्री से हरिद्वार मेले में प्रश्नोत्तर**—मार्च, १८७९)

सन् १८७९ में होने वाले कुम्भ के मेले पर एक दिन मूला मिस्त्री सब

ओवरसियर नहर गंगा ने स्वामी जी से पूछा कि आपने यह मूर्तिखंडन की बात क्यों और कैसे उठाई ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मेरा प्रथम से ही यह विचार था कि मूर्तिपूजा केवल अविद्या अन्धकार से है परन्तु इसके अतिरिक्त मेरे गुरु परमहंस श्री विरजानन्द सरस्वती जी महाराज बैठे-बैठे खण्डन किया करते थे क्योंकि आंखों से लाचार थे। और कहते थे कि कोई हमारा शिष्य ऐसा भी हो जो इस अन्धकार को देश से हटा दे। इसलिए मुझे इस देश पर दया आई इसलिये यह बीड़ा उठाया है। (लेखराम पृष्ठ ६०१)

नवीन वेदान्त

(नवीन वेदान्ती साधु से हरिद्वार में शास्त्रार्थ—५ अप्रैल, १८७९)

५ अप्रैल, सन् १८७९ रविवार तदनुसार पूर्णमासी चैत्र, संवत् १९३६ को जब कि स्वामी जी अतिसार की अधिकता के कारण रुग्ण हो गये और जंघा भी दर्द करती थी अर्थात् एक छाला निकला हुआ था। मेले में धूम पड़ गई क्योंकि एक दिन व्याख्यान नहीं हुआ था। साधुओं ने इसको स्वर्ण अवसर समझा और पंक्तिबद्ध होकर शास्त्रार्थ के लिये आने लगे। इस अभिप्राय से कि वे जब शास्त्रार्थ करना स्वीकार न करेंगे तो हम प्रसिद्ध कर देंगे कि हार गये। स्वामी जी उस दिन तम्बू में चारपाई पर विश्राम कर रहे थे। जब दूर से उनको आता देखा तो उठ बैठे और साधारण सत्कार के पश्चात् आने का कारण पूछा। उनमें से एक परमप्रसिद्ध साधु ने जो सबसे अधिक विद्वान् था कहा कि हम आपसे शास्त्रार्थ करने आये हैं। स्वामी जी ने कहा कि बहुत अच्छा, आप किसी विषय पर बातचीत करें।

साधु जी—हम वेदान्त पर चर्चा करेंगे।

स्वामी जी—पहले आप मुझे समझा दें कि वेदान्त से आपका क्या अभिप्राय है।

साधु जी—वेदान्त से यह अभिप्राय है कि जगत् मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है।

स्वामी जी—जगत् से क्या अभिप्राय है और कौन-कौन पदार्थ जगत् के भीतर हैं और मिथ्या किसको कहते हैं ?

साधु जी—परमाणु से लेकर सूर्य पर्यन्त जो भी है उसे जगत् कहते हैं और यह सब मिथ्या अर्थात् झूठा है।

स्वामी जी—तुम्हारा शरीर, बोलना, चालना, उपदेश, गुरु और पुस्तक भी इसके भीतर हैं या नहीं।

साधु जी—हां यह सब इसके भीतर हैं।

स्वामी जी—और आपका मत भी इसके भीतर है या बाहर ?

साधु जी—हाँ वह भी जगत् के भीतर है।

स्वामी जी—जब तुम स्वयं ही कहते हो कि हम और हमारा गुरु, हमारा मत और हमारी पुस्तक, हमारा बोलना और उपदेश, ये सब मिथ्या ही मिथ्या हैं अर्थात् झूठ है तो हम तुमको क्या कहें। स्वयं वादी के कहने से ही उसका दावा खारिज है। साक्षी आदि की कुछ आवश्यकता नहीं।

साधु जी आश्चर्यचकित तथा पराजित होकर वहां से चले गये और फिर कभी इस प्रकार जत्था बांधकर स्वामी जी के सम्मुख शास्त्रार्थ को न आये।

(लेखराम पृष्ठ ६२२)

नमस्ते पर

(मुंशी इन्द्रमणि जी से मुरादाबाद में शास्त्रार्थ—जौलाई, १८७६)

मुरादाबाद में समाज की स्थापना से पूर्व कई दिन तक मुन्शी इन्द्रमणि और श्री स्वामी जी महाराज का परस्पर इस विषय में शास्त्रार्थ हुआ कि समाजों में प्रणाम के स्थान पर क्या शब्द नियत किया जावे। श्री स्वामी जी कहते थे कि "नमस्ते" कहना चाहिये। मुन्शी इन्द्रमणि ने कहा कि हमने प्रथम जयगोपाल और तत्पश्चात् "परमात्मा जयते" प्रचलित किया, इस पर लोगों ने बहुत आक्षेप किये और हँसी उड़ाई। अब सब मामला ठण्डा हो गया है। अब नमस्ते प्रचलित की जावेगी तो फिर लोग धुन्द मचावेंगे और इसके अतिरिक्त परमेश्वर का नाम जिस शब्द में आवे उसे कहना चाहिये। "नमस्ते" कहने में यह बुराई है कि जो राजा से नमस्ते किया जावे तो क्या राजा भी एक तुच्छ कोली चमार से नमस्ते कहेगा ? स्वामी जी महाराज ने कहा कि मुन्शी जी ! बड़ा किसको कहते हैं ? जिस मनुष्य ने यह गर्व किया कि मैं बड़ा हूँ अर्थात् राजा या विद्वान् या शूरवीर हूँ तो उसमें अभिमान आ गया और उसकी बड़ाई में दोष लग गया। देखो जितने महाराजाधिराज, शूरवीर और विद्वान् हुए हैं उन्होंने अपने मुख से अपने आप को बड़ा कभी नहीं कहा। नमस्ते का अर्थ मान और सत्कार का है जिससे राजा-प्रजा दोनों को परस्पर नमस्ते कहना ठीक है। अब हम तुम से यह पूछते हैं, तुम अपने अन्तःकरण से सत्य कह देना कि जब

कोई व्यक्ति तुम्हारे घर पर आता है या तुमको मिलता है तो उसे देखकर तुम्हारे मन में क्या विचार आता है ?

मुन्शी जी मौन रहे। तब स्वामी जी कहने लगे कि कौन नहीं जानता कि सम्मानित पुरुष को देखकर उसका सम्मान और छोटे व्यक्ति को देखकर उसका आतिथ्य तुरन्त करने का ध्यान आता है। फिर बतलाइये कि ऐसे अवसर पर परमेश्वर के नाम का क्या सम्बन्ध है ? मनुष्य को चाहिये जो मन में हो वही मुख से कहे और यह आपका दोष है कि आपने पहले "जयगोपाल" और फिर "परमात्मा जयते" प्रचलित किया। विचार करके ऐसा शब्द जो पहले इस देशवासियों में प्रचलित था, प्रचलित क्यों न किया। इससे सब आर्यसमाजों में 'नमस्ते" का उच्चारण करना ठीक है जैसा कि सब दिन से महर्षि लोगों में प्रचार था। और नमस्ते शब्द वेदों में भी आया है। हम यजुर्वेद से बहुत से प्रमाण दे सकते हैं। आप "परमात्मा जयते" का किसी प्राचीन ग्रन्थ से प्रमाण नहीं दे सकते। फिर उसी दिन दोपहर के पश्चात् बहुत से प्रमाण आर्षग्रन्थों और वेदों से निकालकर दिखलाये परन्तु मुन्शी जी ने अपने दुराग्रह और हठ-धर्मी से न माना। (लेखराम पृष्ठ ४४३-४४५)

अवतारवाद

(पं० रामप्रसाद तथा पं० वृन्दावन से बदायूं में शास्त्रार्थ—अगस्त, १८७९)

नोट—स्वामी जी ३१ जौलाई, सन् १८७९ को बदायूं मे पधारे और १४ अगस्त, सन् १८७९ की दोपहर तक वहां निवास किया। इसी समय के बीच में यह शास्त्रार्थ हुआ। यद्यपि शास्त्रार्थ की ठीक तिथि लिखी हुई नहीं है तथापि ऐसा अनुमान है कि यह शास्त्रार्थ ५ अगस्त के पश्चात् हुआ क्योंकि ४ अगस्त तक के उनके कार्यक्रम का संक्षिप्त विवरण जीवनचरित्र में दिया हुआ है। उसके पश्चात् शास्त्रार्थ की चर्चा है। यह शास्त्रार्थ दो दिन तक होता रहा।

पण्डित रामप्रसाद, पण्डित वृन्दावन, पण्डित टीकाराम, पण्डित रामप्रसाद दारोगा सभा आदि सज्जन स्वामी जी के निवास स्थान पर शास्त्रार्थ की इच्छा से पहुँचे। प्रथम पण्डित रामप्रसाद जी ने बातचीत आरम्भ की।

पण्डित रामप्रसाद—ईश्वर साकार है और उसमें पुरुषसूक्त की यह ऋचा प्रमाण है—

"सहस्रशीर्षा पुरुष:" इत्यादि (यजु० अध्याय ३१, मन्त्र १)

यदि ईश्वर साकार नहीं तो उसको "सहस्रशीर्षा" आदि क्यों लिखा ?

स्वामी जी—सहस्र कहते हैं सम्पूर्ण जगत् को और असंख्य को। जिसमें असंख्यात शिर, आंख और पैर ठहरे हुए हैं उस परमेश्वर को "सहस्रशीर्षा" आदि कहते हैं। यह नहीं कि उसकी हजार आँखें हों।

पण्डित जी ने अमरकोश का प्रमाण दिया।

स्वामी जी ने कहा कि वेदों में अमरकोश प्रमाण नहीं प्रत्युत निरुक्त और निघण्टु आदि प्रमाण हैं।

पण्डित जी ने कहा कि हम तो वह पढ़े ही नहीं और लक्ष्मी विष्णु की स्त्री है और साकार है। इसमें लक्ष्मीसूक्त का प्रमाण है—

"अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियन्देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवीर्जुष्यताम् ॥ ३ ॥

इसमें जो विशेषण हैं उनसे उसका साकार होना सिद्ध होता है।

स्वामी जी—प्रथम तो यह वाक्य संहिता का नहीं और जो तुम उसको विष्णु की स्त्री समझकर बुलाते हो तो विष्णु तुमको अपनी स्त्री नहीं देगा और तुम उसके मांगने से पाप के भागी होगे और वह भी व्यभिचारिणी ठहरेगी। लक्ष्मी के अर्थ राज्यलक्ष्मी, राज्य की सामग्री और शोभा के हैं और इसी कारण से इस श्लोक में हाथी, रथ और घोड़े लिखे हैं।

पण्डित रामप्रसाद—आप जो कहते हैं कि वेदों के पढ़ने का अधिकार सबको है, यह अनुचित है। वेद पढ़ने का अधिकार केवल द्विजों को ही है और उनमें से भी मुख्य ब्राह्मणों को है।

स्वामी जी—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। इत्यादि।

इस वेदमन्त्र से स्पष्ट सिद्ध है कि वेदों के पढ़ने का अधिकार सबको है।

पण्डित जी—जो रामचन्द्र और कृष्णादि हुए हैं, ये साक्षात् परमेश्वर के अवतार हैं।

स्वामी जी—ऐसा न समझना चाहिये, यह वेद के विरुद्ध है। परमेश्वर कभी अवतार नहीं लेता।

पण्डित जी—इस यजुर्वेद के मन्त्र से विष्णु का वामनावतार सिद्ध होता है-

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।"

स्वामी जी—इससे वामनावतार सिद्ध नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि

परमेश्वर अपनी सामर्थ्य से सब जगत् को तीन स्थानों में स्थापन करके धारण करता है। यह नहीं कि परमेश्वर ने तीन प्रकार से चरण रखा जैसा कि तुम कहते हो।

पण्डित बृन्दावन जी बोले तो इससे विदित हुआ कि विष्णु साकार नहीं है।

स्वामी जी—विष्णु के अर्थ तो करो, यह किस धातु से बना है ?

पण्डित बृन्दावन जी—"विष्लृ व्याप्तौ" से विष्णु बनता है अर्थात् जो सर्वव्यापक हो उसे विष्णु कहते हैं।

स्वामी जी—फिर जो व्यापक है वह साकार कैसे हो सकता है ?

पण्डित रामप्रसाद—इस यजुर्वेद के मन्त्र में—

"मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठः"

जो "कुचर" शब्द आया है उससे मत्स्य (मच्छ) आदि अवतार सिद्ध होते हैं क्योंकि "कुचर" का अर्थ है पृथिवी पर चलने वाला।

स्वामी जी—कुचर से मत्स्यादि अवतार सिद्ध नहीं होते। "कु" के अर्थ वेद में कभी पृथिवी के नहीं लिये जाते।

पण्डित रामप्रसाद—महीधर की टीका में तो ऐसा ही लिखा है।

स्वामी जी—महीधर की टीका प्रायः अशुद्ध है। निरुक्त और निघण्टु आदि के बिना वेद का अर्थ शुद्ध नहीं हो सकता।

पण्डित रामप्रसाद—फिर आपने-अपने पास महीधर की टीका को क्यों रखा हुआ है ?

स्वामी जी—खण्डन के लिये और देखो इसका अशुद्ध अर्थ "गणानां त्वा गणपतिꣳहवामहे" इत्यादि आठ दस मन्त्रों पर। क्या ऐसे अर्थ प्रमाण योग्य हैं कि यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोवे आदि आदि। वेदों पर जो ऋषियों की टीका हैं वही प्रमाण के योग्य हैं। और अवतारों का न होना यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के मन्त्र "सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धम्" इत्यादि से सिद्ध है कि सर्वव्यापक परमात्मा कल्याणस्वरूप, काया अर्थात् शरीर से रहित, नाड़ी नस आदि बन्धन से मुक्त और शुद्धस्वरूप पापों से न्यारा है। जिसने आदि जगत् में अपनी अनादि प्रजा जीवों के लिये वेदविद्या का प्रकाश किया। शास्त्रार्थ दो दिन में समाप्त हुआ। (लेखराम पृष्ठ ४४६-४४७)

सत्यासत्यविवेक की भूमिका

यह शास्त्रार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली ने पं० लेखराम

कृत महर्षि जीवनचरित्र से भाषा में अनुवाद कराके दयानन्द ग्रन्थसंग्रह में छापा था। उसी के अनुसार यह छापा गया है। इस शास्त्रार्थ सम्बन्धी उसके सम्पादकीय में से निम्न लेख भी उपयोगी समझकर नीचे दिया जाता है।

महर्षि-दयानन्द सरस्वती और पादरी टी० जी० स्काट साहेब के मध्य तीन दिन तक बरेली नगरी में जो लिखित शास्त्रार्थ हुआ था, उसका विवरण धर्मवीर श्री पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर कृत महर्षि के बृहद् उर्दू जीवन-चरित्र में, पृष्ठ ४४१ से ४६३ तक मुद्रित हुआ है। महर्षि-दयानन्द १४ अगस्त, सन् १८७९ ई० तदनुसार भाद्रपद कृष्णा १२, संवत् १९३६ वि० को बरेली पधारे थे और बेगम बाग में श्री लाला लक्ष्मी नारायण जी खजांची की कोठी में उन्होंने निवास किया था।

प्रथम कई दिन तक महर्षि के उपदेश होते रहे, जिन में जनता बहुत अधिक संख्या में उपस्थित होती थी। नगर के बड़े राज्याधिकारी कलक्टर आदि तथा अंग्रेज एवं पादरी आदि और नगर के प्रतिष्ठित सज्जन भी बड़े प्रेम और उत्साह से उपस्थित होते थे। इस प्रकार कई दिन तक बड़ा आनन्द रहा और जनता उपदेशामृत पान करके लाभ उठाती रही।

उन दिनों महर्षि के पूर्व परिचित और भक्त सुप्रसिद्ध पादरी टी० जी० स्काट साहेब का निवास भी बरेली में ही था। महर्षि के व्याख्यानों में स्काट साहेब भी बड़े उत्साह से पधारा करते थे। महर्षि के जीवनचरित्र के प्रसंगों में स्काट साहेब का उल्लेख पाया जाता है। मेला चांदापुर में भी श्री स्काट महोदय ने ईसाई मत के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया था। ये पादरी साहेब अमेरिका के रहने वाले थे और ईसाई मत का प्रचार करने के लिये भारत में पधारे थे। ये ईसाइयों के प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय के अनुयायी, सुयोग्य विद्वान्, मधुरभाषी और व्यवहारकुशल विद्वान् थे। महर्षि के ये बहुत प्रेमी थे, और महर्षि ने तो इनका नाम ही भक्त स्काट रख दिया था।

कुछ लोगों ने विचार किया कि महर्षि-दयानन्द और पादरी स्काट साहेब का परस्पर शास्त्रार्थ कराया जाये। महर्षि-दयानन्द और पादरी साहेब ने भी इस प्रस्ताव को उत्तम समझा और सहर्ष स्वीकार कर लिया। तदनुसार आवश्यक नियम आदि निर्धारित किये गये और तीन दिन तक लिखित रूप में यह शास्त्रार्थ आनन्दपूर्वक होता रहा। समाप्ति के कुछ ही दिन पश्चात् इस शास्त्रार्थ का विवरण उर्दू भाषा में; पुस्तकाकार में छपवाकर प्रसारित किया गया था।

धर्मवीर श्री पण्डित लेखराम जी ने अपने ग्रन्थ में जो विवरण बरेली

शास्त्रार्थ का प्रस्तुत किया है, वह सब ज्यों का त्यों उसी प्रति के अनुसार प्रतीत होता है, जो कि शास्त्रार्थ के अन्त में प्रकाशित की गई थी। उस प्रति का आरम्भिक निवेदन श्री पण्डित लेखराम जी के ग्रन्थ में पृष्ठ ४४२ पर इस प्रकार मुद्रित हुआ है—

"विदित हो कि यह लिखित शास्त्रार्थ बड़े आनन्द के साथ जैसा कि प्रायः सुसभ्य, सुयोग्य और विद्वान् पुरुषों में हुआ करता है, और जैसा कि वास्तव में होना भी चाहिए, स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और पादरी टी० जी० स्काट साहेब के मध्य राजकीय पुस्तकालय बरेली :०: में तीन दिन तक ता० २५, २६, और २७ अगस्त सन् १८७६ ई० को लाला लक्ष्मीनारायण साहेब खजांची रईस बरेली की अध्यक्षता में हुआ ।

अन्य नियमों के साथ ही इस शास्त्रार्थ के मुख्य नियम इस प्रकार थे—

"शास्त्रार्थ लिखित होगा। तीन लेखक—एक स्वामी जी की तरफ दूसरा पादरी साहेब की तरफ और तीसरा अध्यक्ष महोदय की तरफ बैठकर शास्त्रार्थ के प्रत्येक शब्द को सावधानी के साथ ज्यों का त्यों लिखते जावेंगे। जिस समय एक विद्वान् निश्चित समय के अन्दर अपना कथन समाप्त कर चुके तो उसका लिखाहुआ वक्तव्य सभा में उपस्थित पुरुषों को सुना दिया जावे और तीनों प्रतियों पर हस्ताक्षर भी कराये जावे। और जब शास्त्रार्थ समाप्त हो तो उस पर अध्यक्ष महोदय के हस्ताक्षर भी कराये जावें। इन तीनों प्रतियों में से एक स्वामी जी के पास, दूसरी पादरी साहेब के पास और तीसरी अध्यक्ष महोदय के पास प्रमाण स्वरूप रहे, जिससे कि बाद में भी उनमें किसी प्रकार की घटा-बढ़ी न हो सके।"

पृष्ठ ४४३ पर फिर प्रार्थना के रूप में लेख है—

"हम इस शास्त्रार्थ को अक्षरशः मूल के कि जिस पर स्वामी जी और पादरी साहेब के हस्ताक्षर हैं, अनुसार करके और स्वामी जी के आदेशानुसार तैयार करके इस को छापेखाने में छपवाते हैं। इसमें किसी अक्षर का भी परिवर्तन नहीं किया है। इसको शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने के लिये यहां तक सावधानता रखी गई है कि जहाँ जिस विद्वान् के हस्ताक्षर थे, वहां हस्ताक्षर का शब्द लिखकर उसी का नाम लिख दिया है। पाठक दोनों विद्वानों के लेखों अथवा वक्तव्यों को सत्यासत्य विवेचक दृष्टि से देखें और किसी प्रकार के पक्षपात को पास न आने दें, जिससे कि सत्य और असत्य का प्रकाश भली प्रकार हो जावे। कुछ सज्जनों का कथन है कि इन शास्त्रार्थों के अन्त में निर्णय भी निकाल देना चाहिए। परन्तु हमने

:०: जहाँ आजकल म्युनिसिपलबोर्ड बरेली का दफ्तर है, पहले यहां पर ही यह पुस्तकालय था, जिसमें यह शास्त्रार्थ हुआ था। ---सम्पादक

अपनी सम्मति प्रकाशित करना उचित नहीं समझा। निर्णय करने का काम पाठकों की सत्यता प्रेमी बुद्धि पर ही छोड़ा जाता है।"

इस भूमिका और प्रार्थना आदि की शब्द रचना से ज्ञात होता है कि यह लेख श्री लाला लक्ष्मीनारायण जी, जो कि अध्यक्ष थे, की ओर से ही है, और उन्होंने ही इस विवरण को सर्वप्रथम प्रकाशित किया था।

इस पुस्तक के विषय में धर्मवीर श्री पं० लेखराम जी आर्य मुसाफिर कृत महर्षि के बृहद् जीवनचरित्र में पृष्ठ ७९८ पर लिखा है—

बड़ी सावधानी के साथ प्रथम वार मास सितम्बर, सन् १८७९ ई० में आर्य भूषण यन्त्रालय शाहजहाँपुर में मुद्रित हुआ। और दोबारा आर्य दर्पण प्रेस शाहजहांपुर में और चौथी और पांचवीं वार उर्दू व हिन्दी में लाहौर में मुद्रित हुआ।"

प्रस्तुत पुस्तक के रूप में हम "सत्यासत्यविवेक" का हिन्दी अनुवाद जनता की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं। हमने इसे धर्मवीर पण्डित लेखराम जी के ग्रन्थ के आधार पर ही तैयार किया है। और अनुवाद-कार्य में इस बात का पूर्ण ध्यान रखा है कि दोनों पक्ष के विद्वानों के भाव पूर्णतया यथावत् रूप में प्रकाशित हों।

—सम्पादक

शास्त्रार्थ-बरेली

सत्यासत्यविवेक

ता० २५ अगस्त, सन् १८७९ ई०

विषय—पुनर्जन्म

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी—

जीव और जीव के स्वाभाविक गुण, कर्म और स्वभाव अनादि हैं। और परमेश्वर के न्याय करना आदि गुण भी अनादि हैं। जो कोई मानता है कि जीव की, और उसके गुण आदि की उत्पत्ति होती है उसको उसका नाश मानना भी अवश्य होगा। और तिस के कारण आदि का भी निश्चय करना और कराना होगा क्योंकि कारण के विना कार्य की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। जो-जो जीव के पाप और पुण्य आदि कर्म प्रवाह से अनादि चले आते हैं, उनका ठीक-ठीक फल पहुँचाना ईश्वर का काम है। और जीवों का विना स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के सुख-दुःख का भोग करना असम्भव है। जब यह बात हुई, तब बारम्बार शरीर का धारण करना भी जीव को अवश्य है। क्योंकि क्रियमाण कर्म नये-नये करता जाता है

ही आसान है कि यह मिथ्या है ऐसा है। और ऐसा नहीं, परन्तु जानने वाले जानते हैं। जिसका दर्द सर्वथा चला गया है, वह जानता है, परन्तु मेरे धर्म के मानने वाले इकतालीस करोड़ ईसाई संसार में हैं उनमें से बहुत से तो झूठे ही हैं, यह मैं स्वीकार करता हूँ उनका कथन भी झूठ ही है।

परन्तु सच्चे आदमी भी बहुत हैं और उनका कथन भी पूर्णतया यथार्थ है, सत्य है। उनकी जीवनचर्या से यह भलीभान्ति प्रमाणित हो जाता है कि उनके सब पाप सर्वथा लुप्त हो चुके हैं। उनके पापों को क्षमा किया गया है। हां इसको जानने और समझने के लिये अपना अनुभव होना भी आवश्यक है। यह कार्य अभ्यास से होगा।

मैं फिर कहता हूँ कि वह अपने अनुभव का प्रमाण, सबसे बढ़कर और पक्का प्रमाण है। युक्ति और तर्क की पुष्टि से भी बढ़कर यह पुष्टि है कि जिसको अनुभव के आधार पर अपना अन्तरात्मा भी पुष्ट करता है। बात यह नहीं कि हम केवल मौखिक कथनमात्र ही करते हैं, ऐसा कथन तो मिथ्या भी हो सकता है। परन्तु जिसके पाप तोबा करने के बाद अपना अस्तित्व सर्वथा खो चुके हैं कि वह नहीं जानता कि जैसे कि कोई पिता अपने पुत्र से क्षमा का वचन कहे तो क्या वह पुत्र यह नहीं समझता कि पिता ने उसे क्षमा कर दिया है और सब चिन्ताओं की कोई आवश्यकता नहीं है। मानव-हृदय की भी इसी प्रकार अवस्था है।

मैंने तर्क, युक्तियों और शास्त्रीय प्रमाणों के द्वारा तथा मनुष्यों के अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर, यह सिद्ध कर दिया है कि ईश्वर पापों को क्षमा करता है। **—हस्ताक्षर पादरी टी० जी० स्काट साहेब**

(लेखराम पृ० ४४९-४७०)

॥ काशी में विज्ञापन-पत्र ॥

सितम्बर, १८७९

सब सज्जन लोगों को विदित किया जाता है कि इस समय पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज काशी में आकर श्रीयुत महाराज विजयनगर के अधिपति के आनन्द बाग में जो महमूदगंज के समीप है, निवास करते हैं। वे वेदमत का ग्रहण करके उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं मानते। किन्तु जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदोक्त १—सृष्टिक्रम २—प्रत्यक्षादि प्रमाण ३—आप्तों का आचार और सिद्धान्त तथा ४—आत्मा की पवित्रता और विज्ञान के विरुद्ध होने के कारण पाषाणादि मूर्तिपूजा, जल और स्थलविशेष पाप निवारण करने की शक्ति व्यास मुनि आदि के नाम से छल से प्रसिद्ध किये नवीन व्यर्थ पुराण नामक आदि,

ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थ, परमेश्वर के अवतार व पुत्र होके अपने विश्वासियों के पाप क्षमा कर मुक्ति देनेहारे का मानना, उपदेश के लिये अपने मित्र पैगम्बर को पृथ्वी पर भेजना, पर्वतों का उठाना, मुर्दों का जिलाना, चन्द्रमा का खण्डन करना, कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति मानना, ईश्वर को नहीं मानना, स्वयं ब्रह्म बनना अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त वस्तु कुछ भी न मानना, जीव ब्रह्म को एक ही समझना, कण्ठी, तिलक और रुद्राक्षादि धारण करना और शैव, शाक्त, वैष्णव गाणपत्यादि सम्प्रदाय आदि हैं, इन सबका खण्डन करते हैं। इससे इस विषय में जिस किसी वेदादि शास्त्रों के अर्थ जानने में कुशल, सभ्य, शिष्ट, आप्त विद्वान् को विरुद्ध जान पड़े, अपने मत का स्थापन और दूसरे के मत का खण्डन करने में सामर्थ्य हो, वह स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करके पूर्वोक्त व्यवहारों को स्थापित करे। इससे विरुद्ध मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। इस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ रहेंगे। वेदार्थ निश्चय के लिये जो ब्रह्मा से लेके जैमिनि मुनि पर्यन्त के बनाये ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थ हैं वे वादी और प्रतिवादी उभय पक्षवालों को माननीय होने के कारण माने जावेंगे। और जो इस सभा में सभासद् हों वे भी पक्षपात रहित धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप तथा साधनों को ठीक-ठीक जानने, सत्य के साथ प्रीति और असत्य के साथ द्वेष रखने वाले हों, इनके विपरीत नहीं। दोनों पक्ष वाले जो कुछ कहें उसका शीघ्र लिखने वाले तीन लेखक लिखते जावें। वादी और प्रति-वादी अपने-अपने लेख के अन्त में अपने-अपने लेख पर हस्ताक्षर से अपना-अपना नाम लिखें। तब जो मुख्य सभासद् हों वे भी दोनों के लेख पर हस्ताक्षर करें। उन तीन पुस्तकों में से एक वादी, दूसरा प्रतिवादी को दिया जाय और तीसरा सब सभा सम्मति से किसी प्रतिष्ठित राजपुरुष की सभा में रक्खा जावे कि जिससे कोई अन्यथा न कर सके। जो इस प्रकार होने पर भी काशी के विद्वान् लोग सत्य और असत्य का निर्णय करके औरों को न करावेंगे तो उनके लिये अत्यन्त लज्जा की बात है, क्योंकि विद्वानों का यही स्वभाव होता है जो सत्य और असत्य को ठीक-ठीक जान के सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कर दूसरों को कराके आप आनन्द में रहना औरों को आनन्द में रखना।

—**पण्डित भीमसेन शर्मा** (देवेन्दनाथ २। २२१)

सत्य वचनों का प्रभाव

(बाबू उमाप्रसाद मुकर्जी दानापुर से प्रश्नोत्तर-३० अक्टूबर, १८७९)

जब स्वामी जी ३० अक्तूबर, सन् १८७९ को दानापुर पधारे तो बाबू उमाप्रसाद मुकर्जी हेडक्लर्क महकमा मैजिस्ट्रेट साहब ने प्रश्न किया—

बाबू—यद्यपि आपका कहना ठीक है परन्तु लोग हठ से न मानें तो आप क्या करेंगे ?

स्वामी—हमारा काम इतना ही है कि हमारा कथन को लोग कान में स्थान दें और जब पूर्ण रूप से सुन लेंगे तो वह सूई की भांति भीतर चुभ जायेंगे, निकाले से न निकलेंगे। यदि उनका मित्र या प्यारा एकान्त में पूछेगा तो स्पष्ट कह देंगे कि ठीक है। हठ या लोभ लालच से न कहे तो न कहे।

(लेखराम पृ० ४९८)

आततायी को दण्ड देना धर्म

(बाबू अनन्तलाल दानापुर से प्रश्नोत्तर—नवम्बर, १८७९)

जब स्वामी जी दानापुर में थे तो एक दिन स्वर्गीय बाबू अनन्तलाल ने एक गुलाब का फूल तोड़ा। उसे देख कर स्वामी जी ने ललकार कर कहा कि भाई ! तूने बुरा किया। यह फूल कितनी वायु को सुगन्धित करता। तूने इसे तोड़कर इसके नियत कार्य्य से इसे रोका। इसके पश्चात् जब स्वामी जी भीतर आनकर बैठे तो स्वामी जी के हाथ में मक्खी उड़ाने का मोर छल था उक्त बाबू ने कहा कि फूल के तोड़ने में तो आपने पाप बतलाया परन्तु क्या आपके हाथ के मोरछल से मक्खी को कष्ट नहीं होता ? इस पर स्वामी जी ने कहा कि आत-तायी के रोकने में तुम्हारे जैसे मनुष्यों ने बाधा डाली जिससे भारत का नाश हो गया। तुम जैसे निर्बल और साहसहीन लोगों से रणभूमि में क्या हो सकता है ?

(लेखराम पृ० ५०१)

अनेक विषय

(भगत जीवनलाल कायस्थ मुजफ्फरनगर से प्रश्नोत्तर—सितम्बर, १८८०)

प्रश्न प्रथम दिन—अज्ञान की निवृत्ति और ज्ञान की प्राप्ति के विना दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति होती है या नहीं ?

उत्तर स्वामी जी—सुख दो प्रकार के होते हैं—एक विद्याजन्य, एक अविद्याजन्य। विद्याजन्य ऐसा सुख होता है जिसको सर्वसुख कहते हैं और अविद्याजन्य ऐसा होता है कि जैसा पशु आदि को। अज्ञान की निवृत्ति विना ज्ञान के नहीं होती है और न ज्ञान की निवृत्ति विना अज्ञान के। जीव के अल्पज्ञ होने से एक विषय में उसको ज्ञान होता है और अनेक विषय में अज्ञान। और जो सर्वज्ञ है उसमें अज्ञान नहीं रहता और जो अल्पज्ञ है उसमें ज्ञान

और अज्ञान दोनों रहते हैं और जो सर्वज्ञ है वह अल्पज्ञ नहीं और जो अल्पज्ञ है वह सर्वज्ञ नहीं। जो अल्पज्ञ है वह परिमित और एकदेशी होता है और जो सर्वज्ञ है वह अनन्त सर्वदेश वस्तु काल रहित है। जैसे आकाश सब मूर्तिमान् द्रव्यों में व्यापक है और मूर्तिमान् द्रव्य व्याप्य हैं। व्यापक उसको कहते हैं जो सर्वदेश स्थित हो और व्याप्य उसको कहते हैं जो एक देशी हो। व्याप्य वस्तु व्यापक से भिन्न होती है। तीनों अवस्था उसकी व्यापक के साथ ही रहती हैं और जैसे मूर्तिमान् द्रव्य किसी अवस्था में आकाश नहीं हो सकते और आकाश मूर्तिमान् द्रव्य का स्वरूप भी नहीं हो सकता। इसी से दोनों वस्तु भिन्न हैं अर्थात् व्याप्य व्यापक दो वस्तु विशिष्ट रहती हैं, एक वस्तु विशिष्ट नहीं हो सकती ।

रात के ग्यारह बज गये इसलिए वार्तालाप पूर्ण न हुआ।

दूसरे दिन बातचीत के बीच में स्वामी जी ने कहा कि इन पोप जी की लीला है। पार्वती ने अपने शरीर से मैल उतार कर बालक बनाकर रख दिया, द्वार पर युद्ध हुआ, पार्वती को विदित न हुआ, चूहे की सवारी और हाथी का शिर लगा दिया।

मैंने कहा कि इसमें तो कुछ आश्चर्य नहीं प्रतीत होता क्योंकि पार्वती के तो हाथ थे और शरीर से मैल उतार कर पुतला बना सकते हैं परन्तु आप यह कहते हैं कि तीन वस्तुएँ अनादि हैं, जब स्थूल सृष्टि हुई तो निरवयव परमात्मा ने संयोग कर दिया। वह निरवयव परमाणु का संयोग विभाग कैसे कर सकता है ?

स्वामी जी ने कहा कि तुम परमाणु जानते हो ? झरोके में जो दिखाई देते हैं उनको त्रसरेणु कहते हैं उनका ६० वां भाग परमाणु होता है। तुम उस परमाणु का अपने हाथों से संयोग-वियोग नहीं कर सकते। परमात्मा उन परमाणुओं की अपेक्षा अति सूक्ष्म है, उसकी दृष्टि में वे स्थूल हैं इसलिए वह संयोग-वियोग कर सकता है ।

इस पर मैंने यह निवेदन किया कि जो परमेश्वर सूक्ष्म है वह व्यापक कैसे है ?

स्वामी जी ने कहा कि जो सूक्ष्म होता है वह व्यापक होता है, स्थूल कहीं व्यापक नहीं होता। जैसे आकाश सूक्ष्म है इसलिये वह व्यापक है परन्तु पृथिवी स्थूल है सो व्यापक नहीं।

मैंने कहा कि यदि परमेश्वर की व्यापकता आप आकाश की भाँति मानते हैं तो इससे जीव और ईश्वर के स्वरूप में अभिन्नता माननी पड़ेगी।

स्वामी जी—इसका पहले उत्तर हो चुका है। अभिन्नता कदापि नहीं, व्यापकव्याप्य भाव रहता है।

श्राद्ध

(ला० निहालचन्द वैश्य रईस मुजफ्फर नगर से प्रश्नोत्तर—सितम्बर, १८८०)

ला० निहालचन्द जी वैश्य रईस मुजफ्फर नगर ने वर्णन किया कि स्वामी जी असौज के महीने में यहां पधारे और हमारे बंगले में नगर के पूर्व की ओर उतरे थे। मुन्शी डालचन्द हेडमास्टर जिला स्कूल और ला० बद्रीप्रसाद तहसीलदार, बाबू बैजनाथ मुन्सिफ और मैं बुलाने में सम्मिलित थे। उन दिनों कनागत थे और इसी विषय में मैंने स्वामी जी से कुछ पूछा था क्योंकि नगर के कुछ पंडित मेरे पास आये और कहा कि चलो हम चलके स्वामी जी से शास्त्रार्थ करें। परन्तु मैंने जब उनसे स्वयं बातचीत की तो वे मेरे ही प्रश्नों का उत्तर न दे सके परन्तु अन्त में उनके अनुरोध पर मैं स्वामी जी के पास गया। इनमें ला० बद्रीप्रसाद जी भी आगये और स्वामी जी से बातचीत आरम्भ की। ला० बद्रीप्रसाद जी ने स्वामी जी से कहा कि आप से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं परन्तु मैंने कहा कि मैं न शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ और न शास्त्रार्थ की योग्यता रखता हूँ परन्तु केवल शिष्यरूप में समझना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि श्राद्ध का फल उसके पूर्वजों को नहीं पहुंच सकता क्योंकि प्रथम तो पितृ विदित नहीं कि किस लोक में हैं।

उसके उत्तर में मैंने निवेदन किया कि यदि यह सिद्धान्त स्वीकार किया जावे तो दान का देना भी निष्फल है। इसका फल हमको मरने के पश्चात् किस प्रकार मिलेगा।

उत्तर—वह जीव का अपना कर्म है और कर्म कर्त्ता के साथ रहता है, नष्ट नहीं होता परन्तु मृतक का श्राद्ध दूसरे का कर्म है और जब उसका सम्बन्ध पूर्णतया संसार से टूट चुका तब किया गया है, इसलिए निष्फल है और शास्त्र में भी ऐसा ही लिखा है। और इसके अतिरिक्त यदि यह माना जावे कि पितरों को हमारे दान या प्रार्थना से अच्छा लाभ पहुंच गया है तो यह भी मानना पड़ेगा कि जो उसके शत्रु शाप देते हैं या उसके बेटे उसके नाम से छल करते हैं, उसका भी प्रभाव अवश्य होगा। तो इससे यह सिद्ध हुआ कि हमारी प्रार्थना से स्वर्ग को और शाप से नरक को बार-बार आना जाना पड़ेगा।

इस पर मैंने यह कहा कि उनको पुण्य का फल मिलना चाहिए, पाप का नहीं। इसलिए कि जिस समय वह व्यक्ति मरा तो पाप का फल अवश्य

निश्चित होगा, इसलिए शाप का प्रभाव नहीं हो सकता। जैसे कि अधिकार युक्त न्यायाधीश जब एक अपराध का दण्ड दे चुकता है तो चाहे अपराधी कितनी ही पुकार क्यों न करे परन्तु दण्ड में न्यूनता या अधिकता नहीं हो सकती। पुण्य का फल किसी मृतक पितृ को इसलिए लिखा है कि जो धन मृतक ने इकट्ठा किया था वही पुण्य कर्म करने में उसकी सन्तान व्यय करती है। उदाहरणार्थ उसने अपने धन के इकट्ठा करने में यदि कोई अधर्म भी किया हो और उसका दण्ड भी निश्चित हो चुका हो तो चूंकि उसके पश्चात् उसकी सन्तान ने अच्छे काम में लगाया इसलिये उसका फल उसको मिलना चाहिये।

उत्तर—यह ठीक नहीं है कि पाप का फल निश्चित हो चुका। यदि निश्चित हो चुका तो भी कर्म के अनुसार दोनों निश्चित होंगे, पहले पिछले की कोई शर्त नहीं। यह ठीक है कि दण्ड न्यूनाधिक नहीं हो सकता तो फिर बेटे के दान करने से उस नरकगामी को क्या लाभ हो सकता है। अब रही मृतक के एकत्रित हुए धन के व्यय की बात तो यदि वह पुण्य में व्यय करता है तो और पाप में व्यय करता है तो दोनों प्रकार व्यय करने वाले का हानि-लाभ है, किसी मृतक का उससे कोई सम्बन्ध नहीं। अन्यथा यदि पुण्य कार्य में व्यय करने से मृतक को लाभ है तो पाप कार्य में व्यय करने से हानि भी अवश्य होगी क्योंकि जो पाप उस धन से लड़का पीछे करता है, यह असम्भव है कि उसका प्रभाव न हो। और चूंकि बाप के एकत्रित किये हुए धन से प्रायः सन्तान दुराचारी होती है, इसलिए यह सिद्धान्त ही अत्यन्त बुरा प्रभाव डालने वाला है।

फिर मैंने शीघ्र जाना था, अधिक बातचीत न हुई। चलते समय भी स्वामी जी कहते थे कि इस बात का पूर्ण निर्णय नहीं हुआ। उस दिन से स्वामी जी का प्रेम मेरे हृदय में घर कर गया। (लेखराम पृष्ठ ५१२-५१३)

शास्त्रार्थ का बहाना

(पादरी गुल्बर्ट साहब से देहरादून में शास्त्रार्थ—अक्टूबर-नवम्बर, १८८०)

स्वामी जी ७ अक्टूबर, सन् १८८० से २० नवम्बर, सन् १८८० तक देहरादून ठहरे। इसी बीच में एक दिन एक पादरी साहब जिनका नाम गुलबर्ट और उपाधि मैकमासर है, कुछ ईसाइयों के साथ शास्त्रार्थ के लिये आये। और आते ही स्वामी जी से यह बातचीत आरम्भ की कि वेद के ईश्वरीय वचन होने में तुम्हारे पास क्या युक्ति है ? चूंकि स्वामी जी उनके ढंग से समझ गये थे कि यह सब छेड़छाड़ है, कुछ सत्य के निर्णय पर इस बातचीत का

आधार नहीं। इसलिये उनके प्रश्न के उत्तर में इस प्रकार कहा "कि इंजील के ईश्वरीयवचन होने का आपके पास क्या प्रमाण है ?"

यह सुनकर पादरी साहब कहने लगे कि वाह! पहले तो हमारा प्रश्न है।

उधर स्वामी जी ने कहा कि वाह! मुझको भी तो पहले उत्तर लेने का ध्यान है। इस पर पादरी साहब उठकर चलने लगे। तब स्वामी जी ने कहा कि पादरी साहब! आप तो शास्त्रार्थ करने को आये थे, इतना शीघ्र क्यों भागते हैं ?

पादरी साहब ने इस पर यह कहा कि जब आप उत्तर ही नहीं देते तो फिर हम बैठकर क्या करें ? इस पर स्वामी जी ने कहा कि बहुत अच्छा पहले मैं ही उत्तर दूंगा, परन्तु उसके पश्चात् इंजील के विषय में प्रश्न करूंगा और आपसे उत्तर लूँगा। इस पर भी पादरी साहब न जमे और उठकर भागने को हुए। तब स्वामी जी ने कहा कि पादरी साहब! आप पहले केवल एक नहीं प्रत्युत दो-तीन प्रश्न कर लीजिये परन्तु उत्तर देने के पश्चात् मेरे आक्षेपों को सुनिये परन्तु यह बात भी पादरी साहब को बुरी लगी और उठकर चलने को उद्यत हुए। तब स्वामी जी ने यह कहा कि अच्छा पहले आप पाँच प्रश्न तक वेद पर कर लीजिये और जब उनके उत्तर मैं दे चुकूं फिर मुझको अपनी इंजील पर आक्षेप करने दीजिये परन्तु यह भी पादरी साहब को स्वीकार न हुआ और पूर्ववत् डरते रहे। तब स्वामी जी ने कहा कि आप इंजील पर आक्षेपों के होने से क्यों इतना घबराते हैं ? लीजिये पहले आप वेद पर दस प्रश्न तक कर लीजिये और उत्तर सुनने के पश्चात् मुझको इन्जील पर आक्षेप करने की आज्ञा दीजिये ताकि सुनने वालों को आनन्द आवे और सत्य और झूठ की वास्तविकता प्रकट हो जावे। भला यह कहाँ की रीति है कि आप अपनी कहे जावें और दूसरे की न सुनें। इस पर पादरी साहब को भीड़ की लज्जा ने रोका और तब उन्होंने विवश होकर कहा कि बहुत अच्छा परन्तु जिस समय इंजील पर आक्षेप किये जाने की घड़ी आई और लिखने की अवस्था उत्पन्न हुई तब तो पादरी साहब की विचित्र दशा हुई अर्थात् वही मुसलमान लोगों की सी रट लगाये जाते थे कि जब तक हम अपने प्रश्न के उत्तर से सन्तोष प्राप्त न कर लेंगे और उसकी स्वीकृति न दे देंगे तब तक हम तुमको न बोलने देंगे और न तुम्हारी सुनेंगे।

यह देखकर स्वामी जी ने कहा कि आप अपने प्रश्नों के विषय में तो कहते हैं परन्तु मेरे प्रश्नों के विषय में भी इस बात को स्वीकार करते हैं ? तो

बस "नहीं" के अतिरिक्त और क्या उत्तर था क्योंकि यह सारा बखेड़ा तो अपना बड़प्पन छौंकने और झूठी कीर्ति प्राप्त करने के अभिप्राय से था। शास्त्रार्थ से तो पूर्णतया इंकार ही था। जब स्वामी जी ने पादरी साहब का अंतिम "नहीं" का उत्तर सुना तो यह कहा कि पादरी साहब ! आप बिल्कुल न्याय से काम नहीं लेते, केवल शास्त्रार्थ का नाम करते हैं परन्तु आपकी यह चतुराई कि कहीं पोल न खुल जाये, व्यर्थ गई और आपकी सारी वास्तविकता प्रकट हो गई क्योंकि आप उन नियमों को जो शास्त्रार्थ में आवश्यक होते हैं, स्वीकार नहीं करते और न और की सुनना चाहते हैं। देखो मैं पहले भी कह चुका हूँ और फिर भी कहता हूँ कि प्रथम आप वेद पर एक से लेकर दश तक आक्षेप कीजिये और मुझ से उत्तर लीजिये और तत्पश्चात् मुझको अपनी इंजील पर आक्षेप करने दीजिये और उत्तर प्रदान कीजिये। और जब आप मेरे आक्षेपों का उत्तर दे चुकें तो फिर आप चाहें और नये दश प्रश्न मुझ पर कीजिये, चाहें अपने पहले दश प्रश्नों में से यदि किसी में कोई सन्देह शेष रहे और मेरे उत्तर से इच्छानुसार सन्तोष न हो तो वह पूछिये और फिर उत्तर सुनिये ताकि सभा में उपस्थित लोग भी जान लें कि सत्य क्या है और असत्य क्या है ?

सारांश यह कि जब पादरी साहब के पास कोई और बहाना अवशिष्ट न रहा तो यह कहा कि या तो आप केवल मेरा ही संतोष कीजिये और अपने आक्षेपों को रहने दीजिये अन्यथा मैं जाता हूँ, आप बैठे रहिये।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पादरी साहब ! इस सभा में उपस्थित लोग तो आपके बार-बार भागने और किसी शर्त पर न जमने से भली-भाँति जान ही गये हैं कि आप इंजील पर आक्षेप होने से थर-थर काँपते है और पीछा छुड़ाने के लिये बार-बार कूदते फाँदते फिरते हैं। अब आप जानें और आपका काम। अच्छा तो यही था कि आप शास्त्रार्थ करते और अपने जी की भड़ास निकाल लेते। यह सुनकर पादरी साहब ने कठोर शब्दों में कहा कि बस आप उत्तर देते ही नहीं, मैं जाता हूँ। इस पर स्वामी जी ने भी कहा कि आप प्रश्न का उत्तर लेते ही नहीं क्योंकि आपका तो प्रयोजन कुछ और ही है, शास्त्रार्थ का तो केवल नाम है। अाच्छा जाइये, मुझको इस समय काम है।

(लेखराम पृ०-५१८-५१९)

राधा स्वामी मत

(राधास्वामी मत के साधुओं से आगरा में प्रश्नोत्तर—नवम्बर, १८८०)

स्वामी जी के आगरा निवास के समय एक दिन राधास्वामी मत के ५-७ पंजाबी साधु आये, जिनमें स्त्रियां और पुरुष दोनों सम्मिलित थे। और प्रश्न किया कि कोई गुरु के उपदेश और सहायता के विना संसार-सागर से पार नहीं हो सकता।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि गुरु की शिक्षा तो आवश्यक है परन्तु जब तक कोई चेला अपना आचार ठीक न करे कुछ नहीं हो सकता।

उन्होंने प्रश्न किया कि ईश्वर के दर्शन कैसे हो सकते हैं?

स्वामी जी ने कहा कि जैसे तुम मूर्खता से ईश्वर के दर्शन करना चाहते हो उस प्रकार नहीं हो सकते। एक प्रश्न उनका यह था कि ईश्वर तो भक्त के वश में है।

स्वामी जी ने कहा कि भक्ति तो ईश्वर की आवश्यक है परन्तु पहले यह समझ लो कि भक्ति चीज क्या है। विना किसी पुरुषार्थ के किये कोई वस्तु स्वयमेव प्राप्त नहीं हो सकती और जिस प्रकार से तुम भक्ति करना चाहते हो ऐसे बहुत से पथ लोगों के बिगाड़ने के लिये हुए। इन से इस लोक या परलोक का कोई लाभ नहीं हो सकता।

मूर्तिपूजा पर भी बात चली। उन्होंने कहा कि हम और हिन्दुओं से अच्छे हैं।

स्वामी जी ने कहा—नहीं. वह रामचन्द्र और कृष्णादि उत्तम पुरुषों को देवता और अवतार मानते हैं, तुम गुरु को परमेश्वर से बढ़कर मानते हो। इसलिये तुम उनसे किसी प्रकार अच्छे नहीं, प्रत्युत बुरे हो।

उन्होंने कहा कि वेद के पढ़ने में बहुत समय नष्ट होता है परन्तु उससे कुछ भक्ति प्राप्त नहीं होती।

स्वामी जी ने कहा कि जो पुरुषार्थ कुछ नहीं करता और भिक्षा माँगकर पेट पालना चाहता है उसे वेद का पढ़ना बहुत कठिन है।

ये लोग कुछ भी विद्वान् नहीं थे। (लेखराम पृष्ठ ५२५—५२६)

पुनर्जन्म

(तुफैल अहमद कोतवाल आगरा से प्रश्नोत्तर—नवम्बर, १८८०)

२५ नवम्बर, सन् १८८० से १० मार्च, सन् १८८१ तक स्वामी जी आगरा में ठहरे। इसी बीच में एक दिन मौलवी तुफैल अहमद नगर कोतवाल ने पुनर्जन्म पर आक्षेप किया कि यह गलत प्रतीत होता है, इसके मानने से कई आरोप उत्पन्न होते हैं। ईश्वर ऐसा अन्यायी नहीं कि जीवों को बार-बार उत्पन्न करे और उनके द्वारा अनुचित अपराध किये जावें। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति मर गया, जो इस समय उसकी बेटी है अगले जन्म में वही उसकी पत्नी होवे।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि बेटी और बाप का सम्बन्ध शरीर का है—आत्मा का नहीं। चूँकि आत्मा का किसी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं इससे यह आक्षेप आत्मा पर लागू नहीं हो सकता।

इस पर उनकी शान्ति हो गई और वे फिर कोई उत्तर न दे सके।

(लेखराम पृष्ठ ५२४)

अग्नि का अर्थ परमात्मा

(एक पादरी साहब ने आगरा में स्वामी जी से प्रश्न किया—दिसम्बर सन् १८८०)

मुंशी गिरधरलाल साहब वकील ने वर्णन किया कि—

एक पादरी साहब हमारे मकान पर आये थे। उन्होंने प्रश्न किया कि आपने वेदभाष्य में जो अग्नि को परमेश्वर कहा है, वहां अग्नि का अर्थ परमेश्वर नहीं हो सकता। स्वामी जी ने कहा कि प्रथम तो व्याकरण के अनुसार इस शब्द का अर्थ परमेश्वर हो सकता है। इस पर उनकी कोई शंका शेष न रही।

(लेखराम पृ० ५२४)

नास्तिक तथा जैन मत

**(आत्माराम जी पूज लुधियाना से पत्र-व्यवहार द्वारा प्रश्नोत्तर—
नवम्बर, १८८० से जनवरी, १८८१)**

नोट—जैनियों के आचार्य पूज्यवर आत्माराम जी पंचायत सराओगियां, लुधियाना और ठाकुरदास जी रईस गूजरांवाला ने स्वामी जी महाराज से पत्र द्वारा कुछ प्रश्न पूछे थे, उनके उत्तर स्वामी जी ने अपने पत्र मिति ६ नवम्बर, सन् १८८० मंत्री आर्यसमाज देहरादून के द्वारा आर्यसमाज गूजरांवाला में

भिजवा दिये जिन्हें १३ नवम्बर, सन् १८८० को प्रधान आर्यसमाज गूजरांवाला ने प्रश्नकर्त्ताओं के पास भेज दिया। उपप्रधान आर्यसमाज ने प्रश्नकर्त्ताओं को निम्नलिखित पत्र भी अपनी ओर से लिखा—

"श्रीयुत पंडित आत्माराम जी और ला० ठाकुरदास जी को नमस्ते ! देहरादून से यहां एक पत्र उन प्रश्नों के उत्तर का जो आप सज्जनों ने स्वामी जी से किये थे, इस प्रयोजन से पहुंचा था कि इसकी एक प्रतिलिपि आपके पास भेजी जावे, सो प्रतिलिपि आपके समीप भेजी जाती है और यह भी प्रकट किया जाता है कि इसकी एक प्रतिलिपि स्वामी जी की आज्ञानुसार लुधियाना के श्रावक सज्जनों के पास भी भेजी गई है। मुंशी प्रभुदयाल जी से आपको विदित हुआ होगा।"

मिति १३ नवम्बर, सन् १८८० नारायणकृष्ण उपप्रधान आर्यसमाज गूजरांवाला।

प्रश्नोत्तर

(पूज्यवर आत्माराम जी पंचायत सराओगियां लुधियाना और ठाकुरदास जी रईस गूजरांवाला जैन मतानुयायी सज्जनों के प्रश्नों के उत्तर)

प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश में जो श्लोक लिखे हैं जैनियों के किस शास्त्र व ग्रन्थों के हैं ?

उत्तर—ये सब श्लोक बृहस्पति मतानुयायी चार्वाक जिनके मत का दूसरा नाम लोकायत है और वे जैनमतानुयायी हैं, उनके मतस्थ शास्त्र व ग्रन्थों के हैं ?

श्लोकों का भाष्य निम्नलिखित है—

(१) :o: जब तक जिये सुख से जिये, मृत्यु गुप्त नहीं, भस्म हुए पीछे शरीर में फिर आना कहाँ ? (इसी प्रकार इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत अभ्याणक का मत है।

(२) अग्निहोत्र, तीन वेद, त्रिपुंड्र भस्म लगाना, यह निर्बुद्धि और साहस रहित लोगों की जीविका बृहस्पति ने रची है।

:o: ये श्लोक जो सत्यार्थप्रकाश प्रथमावृत्ति पृष्ठ ४०२, ४०३ पर हैं। ये समस्त श्लोक स्वामी जी से पहले सर्व शास्त्र-संग्रह में सायणाचार्य ने और उनकी टीका में तारानाथ वाचस्पति ने लिखे हैं, जो जीवानन्द प्रेस में प्रकाशित हो चुके हैं। (देखो उसका प्रारम्भ)।

(३)—अग्नि उष्ण तथा जल शीतल और छूने वाली ठंडी वायु किसी ने इनके बनाने वाले को देखा ? ये अपने स्वभाव से ऐसे हैं ।

(४) न स्वर्ग, न नरक, न कोई और मोक्ष, वर्ण और न आश्रम के काम फलदायक हैं ।

(५)—अग्निहोत्र, तीन वेद, त्रिपुण्ड्, भस्म लगाना. यह निर्बुद्धि तथा साहसरहित लोगों की जीविका ब्रह्मा ने बनाई है ।

(६)—यदि पशु ज्योतिष्टोम यज्ञ में मारे जाने से स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने आप को इसमें क्यों नहीं मार डालता ?

(७)—मरे हुए जीवों को यदि श्राद्ध तृप्ति का कारण है तो मार्ग मे लोगों को भोजन जलादि ले जाना व्यर्थ है ।

(८)—स्वर्ग में बैठा हुआ यदि दान से तृप्त होता तो कोठे पर बैठा हुआ क्यों न होता ?

(९)—जब तक जिये सुख से जिये, ऋण, लेकर घृत पीये, भस्म हुए पीछे शरीर में फिर आना कहाँ ?

(१०)—यदि शरीर से निकल कर जीव परलोक को जाता है तो बन्धुओं के प्रेम से फिर लौटकर क्यों नहीं आता ?

(११)—यह सब जीवन निर्वाह का साधन ब्राह्मणों ने बना लिया है । मरे हुए जीवों की क्रियादि और कुछ नहीं है ।

(१२)—घोड़े का लिंग स्त्री ग्रहण करे भांडों ने इस प्रकार की बातें बना रखी हैं ।

(१३)—तीन वेद के बनाने वाले भांड, धूर्त निशाचर हैं और जर्फरी और तुर्फरी शब्द पण्डितों के कल्पित हैं ।

(१४) मांस खाना राक्षसों का काम है ।

इसी प्रकार ये सब श्लोक इस बात को प्रकट कर रहे हैं कि जैन मत के सम्प्रदायों ने कठोर निन्दा वेद मत की की है और जो कुछ मैंने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है, वह सब ठीक-ठीक है ।

"पहले पत्र के उत्तर में ला० ठाकुरदास आदि को लिख भेजा गया था कि जैन मत की कई शाखाएं हैं । यदि आप प्रत्येक शाखा के मन्त्र सिद्धान्त जानते होते तो आपको सत्यार्थप्रकाश के लेख में सन्देह कभी न होता । आप लोगों के प्रश्नों के उत्तर में विलम्ब इसलिये हुआ कि यदि कोई सज्जन सभ्य विद्वान्

जैसा कि श्रेष्ठ पुरुषों को लेख करना चाहिये वैसा करता है तो उसी समय उत्तर भी लिखा दिया जाता है क्योंकि सभ्यतापूर्वक लेख के उत्तर में स्वामी जी विलम्ब कभी नहीं करते। देखिये! अब पंचायत सराओगियां लुधियाना ने जोकि लेख किया तो स्वामी जी ने उत्तर भी शीघ्र लिखवा दिया और अब भी लिख दिया गया है कि जितने सत्यार्थप्रकाश विषयक आप लोगों के प्रश्न हों, सब लिखकर भेज दीजिये ताकि सबके उत्तर एक संग लिख दिये जावें। जैसा स्वामी जी ने लिखवाया था कि आत्मारामजी को जैन मत वाले शिरोमणि पंडित गिनते हैं। इनका स्वामी जी का पत्र-लेखानुसार समागम होता तो सब बातें शीघ्र ही पूरी हो जातीं परन्तु ऐसा न हुआ और यह भी शोक की बात है कि हमने इस विषयक रजिस्टरी चिट्ठी पंचायत सराओगियाँ लुधियाना को भेजी, उसका उत्तर भी अब तक नहीं मिला, न प्रश्न भेजे। किन्तु जो ठाकुरदास ने एक बात लिख भेजी थी कि यह श्लोक जैनमत के किस शास्त्र और किस ग्रन्थ के अनुसार है और जो बात करने के योग्य आत्माराम जी हैं उनका शास्त्रार्थ करने में निषेध लिख भेजा और ठाकुरदास जी की यह दशा है कि प्रथम चिट्ठी में संस्कृत और भाषा के लिखने में अनेक दोष लिखे हैं। अब आप लोग धर्म न्याय से विचार लीजिये कि क्या यह बात ऐसी होनी योग्य है कि जब-जब चिट्ठी ठाकुरदास ने लिखी तब-तब स्वामी जी के पास और उसमें जो बात शिष्ट पुरुषों के लिखने योग्य न थी, सब लिखी और जो योग्य है अर्थात् आत्माराम जी उसको बात करने और लिखने वा चिट्ठी पर हस्ताक्षर करने से अलग रखते है और एक यह कि ठाकुरदास जी से स्वामी जी का सामना कराते हैं क्या ऐसी बात करनी शिष्टों को योग्य है ? अब अधिक बात करते हो तो आप अपने मत के किसी योग्य विद्वान् को प्रवृत्त कीजिये कि जिससे हम और आपको सत्य और झूठ का निश्चय होकर बहुत उत्तम ज्ञान हो सके। बुद्धिमानों के सामने अधिक लिखना आवश्यक नहीं किन्तु अपनी सज्जनता उदारता, अपक्षता तथा बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता में थोड़े लिखने से बहुत जान लेते हैं।

मिति कार्तिक सुदि ४, शनिवार, संवत् १९३७ तदनुसार ६ नवम्बर सन् १८८०
कृपाराम मन्त्री, आर्यसमाज – देहरादून

अपने हस्ताक्षरों से आत्माराम जी ने जो प्रश्न भेजे थे—१४ नवम्बर सन् १८८० को उनके नाम स्वामी जी ने यह पत्र भेजा—

पूज्यवर आत्माराम जी, "मिति १४ नवम्बर सन् १८८०

नमस्ते। पत्र आपका मिति नवम्बर सन् १८८० का लिखा हुआ १०

नवम्बर सन् १८८० की सांयकाल को मेरे पास पहुंचा, देखकर आनन्द हुआ। अब आपके प्रश्नों का उत्तर विस्तारपूर्वक लिखता हूँ।

(समाचार पत्र "आफताबे पंजाब," १३ दिसम्बर, १८८०)

प्रश्न नं० १—सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास १२ पृष्ठ ३६६, पंक्ति १६) में लिखा है कि जब प्रलय होता है तो पुद्गल जुदी-जुदी हो जाते हैं ऐसा नहीं है।

उत्तर–मैंने ठाकुरदास जी के उत्तर में एक पत्र आर्यसमाज गूजरांवाला के द्वारा भेजा था, जो आपके पास भी पहुंचा होगा। उसमें यह बतलाया गया है कि जैन और बौद्ध दोनों एक ही हैं चाहे उनको बौद्ध कहो चाहे जैन कहो। कुछ स्थानो में महावीरादि तीर्थंकरों को बुद्ध और बौद्धादि शब्दों से पुकारते हैं और कई स्थानों पर जिन, जैन, जिनवर, जिनेन्द्रादि नामों से बोलते हैं। जिनको चार्वाक बुद्ध की शाखाओं में कहते हैं उन्हें लोग बुद्ध, स्वयं बुद्ध और चारबोधादि कहते हैं। आप अपने ग्रन्थों में देखलीजिये (ग्रन्थ विवेकसार, पृष्ठ ६५, पंक्ति १३) विध, बोध—यह एक सिद्ध अनेक सिद्ध भगवान् हैं (पृष्ठ ११३, पंक्ति ७)।

चारबुद्ध की कथा (पृष्ठ १३७, पंक्ति ८) प्रत्येक बुद्ध की कथा (पृष्ठ १३८, पंक्ति २१) स्वयं बुद्ध की कथा (पृष्ठ १५२, पंक्ति १४)।

चार बुद्ध समकाल मोक्ष को गये। इसी प्रकार और भी आपके ग्रन्थों से कथा स्पष्ट विद्यमान है जिनको आप या और कोई जैन श्रावक विरुद्ध न कह सकेंगे।

और ठाकुरदास जी पहली चिट्ठी में (उन श्लोकों के साथ जो मैंने इससे पहले पत्र में लिखकर आपके पास भिजवाये हैं) आप लोग कई श्लोक स्वीकार भी कर चुके हैं। उस चिट्ठी की प्रतिलिपि मेरठ में है और आपके पास भी होगी। कल्पभाष्य भूमिका (जिसमें राजा शिवप्रसाद जी ने अपने जैनमतस्थ पितादि पूर्व पुरुषों की परम्परा का वृत्तान्त लिखा है, उनकी साक्षी भी लिख भेजी और इतिहासतिमिर नाशक खंड ३, पृष्ठ ८, पंक्ति २१ से लेकर पृष्ठ ९ की पंक्ति ३२ तक) स्पष्ट लिखा है कि जैन और बौद्ध एक ही के नाम हैं।

कई स्थानों पर महावीरादि तीर्थंकरों को बौद्ध कहते हैं, उन्हीं को आप लोग जैन और जिनादि कहते हैं। अब रहे बौद्ध की शाखाओं के भेद जो चार्वाक अभ्यारणकादि हैं जैसा कि आपके यहाँ श्वेताम्बर, दिगम्बर, ढूंढिया आदि शाखाओं के भेद हैं कि उनमें कोई शून्यवाद, कोई क्षणिक, कोई जगत् को नित्य मानने वाला कोई अनित्य मानने वाला, कोई स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति और

प्रलय मानते हैं और कोई आत्मा को पांच तत्त्वों (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और उनके मेल से) बनी हुई मानते हैं और उसका नाश हो जाना भी मानते हैं (देखो रत्नावली ग्रन्थ, पृष्ठ ३२ पंक्ति १३ से लेकर पृष्ठ ४३ पंक्ति १० तक) कि उस स्थान पर सब जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय ही लिखा है या नहीं।

इसी प्रकार चार्वाकादि भी कई शाखावाले जिसको आप पुद्गल कहते हैं, उसको अलूदादि नाम से लिखते हैं और उनके आपस में मिलने से जगत् की उत्पत्ति और अलग होने से प्रलय होना ही मानते हैं और वे जैन और बौद्ध से पृथक् नहीं हैं प्रत्युत जैसे पौराणिक मत में रामानुजादि वैष्णवों की शाखा और पाशुपतादि शैवोंकी और वाममार्गियों की दस महादायास शाखाएं, और ईसाइयों में रोमन कैथलिक आदि और मुसलमानों में शिया और सुन्नी आदि शाखाओं के कतिपय भेद हैं और इतने पर भी वेद और बाईबिल और कुरान के सम्प्रदाय में वे एक ही समझे जाते हैं। वैसे ही आप के अर्थात् जैन और बौद्ध मत की शाखाओं के भेद यद्यपि अलग-अलग लिखे जा सकते हैं परन्तु जैन या बौद्ध मत में एक ही हैं।

आपने बौद्ध अर्थात् जैन मत के प्रत्येक सम्प्रदाय के तन्त्र सिद्धान्त अर्थात् भेद वर्णन करने वाले ग्रन्थ देखे होते तो सत्यार्थप्रकाश में जो लेख उत्पत्ति और प्रलय के विषय में है उस पर शंका कभी न करते।

प्रश्न नं० २—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३९७, पंक्ति २४ (प्रश्न) "मनुष्यादिकों को ज्ञान है, ज्ञान से वे अपराध करते हैं, इससे उनको पीड़ा देना कुछ अपराध नहीं"—यह बात जैनमत में नहीं।

उत्तर—ग्रन्थ विवेकसार में पृष्ठ २२८ पंक्ति १० से लेकर पंक्ति १५ तक देख लीजिये, क्या लिखा है अर्थात् गणाभ्योग और स्वजनादि समुद्री की आज्ञा जैसे विष्णुकुमार ने कुछ की आज्ञा से बौद्धरूप रचना करके निमिची नाम पुरोहित को कि वह जिनका विरोधी था, लात मारकर सातवें नरक में भेजा और ऐसी ही और बातें।

प्रश्न नं० ३ सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३९९ पंक्ति ३। और उसके ऊपर (अर्थात् पद्मशिला पर) बैठ के चराचर का देखना।

उत्तर—पुस्तक रत्नसार भाग पृष्ठ २३ पंक्ति १३ से लेकर पृष्ठ २४ पंक्ति २४ तक देख लीजिये कि वहाँ महावीर और गौतम की पारस्परिक [illegible] में क्या लिखा है।

प्रश्न नं० ४—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४०१, पंक्ति २३। और उनके मत में न हुए वे श्रेष्ठ भी हुए तो भी उसकी सेवा अर्थात् जल तक भी नहीं देते।

उत्तर—पुस्तक विवेकसार पृष्ठ २२१, पंक्ति ३ से लेकर पंक्ति ८ तक लिखा है, देख लीजिये कि अन्य मत की प्रशंसा या उनका गुणकीर्तन, नमस्कार प्रणाम करना या उनसे कम बोलना या अधिक बोलना या उनको बैठने के लिये आसनादि देना या उनको खाने-पीने की वस्तु, सुगन्ध, फूल देना या अन्य मत की मूर्ति के लिये चन्दन पुष्पादि देना, ये छः बातें नहीं करनी चाहियें।

प्रश्न नं० ५—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४०१, पंक्ति २७। किन्तु साधु जब आता तब जैनी लोग उसकी दाढ़ी मूँछ और सिर के बाल सब नोच लेते हैं।

उत्तर—ग्रन्थकल्प भाष्य पृष्ठ १०८, पंक्ति ४ से लेकर ९ तक देख लीजिये और प्रत्येक ग्रन्थ में दीक्षा के समय (अर्थात् चेला बनाने के समय) पांच मुट्ठी बाल नोचना लिखा है। यह काम अपने हाथ से अर्थात् चेले या गुरु के हाथ से होता है और अधिकतर ढूंढियों में है।

प्रश्न नं० ६—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४०२, पंक्ति २० से लेकर जो श्लोक जैनियों के बनाये लिखे हैं वे जैनमत के नहीं।

उत्तर—मैं इसका उत्तर इससे पहले पत्र में लिख चुका हूँ (मिति कार्तिक सुदि ४, शनिवार)। आपके पास पहुंचा होगा, देख लीजिये।

प्रश्न नं० ७—सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४०३, पंक्ति ११। अर्थ और काम दोनों पदार्थ मानते हैं।

उत्तर—यह मत जैनधर्म से सम्बन्धित सम्प्रदाय चार्वाक का है जिसने ऐसे-ऐसे श्लोक कि जब तक जिये, सुख से जिये, मृत्यु गुप्त नहीं, भस्म होकर शरीर में फिर आना नहीं आदि आदि अपने मत के बना लिये हैं। इसी प्रकार नीति और कामशास्त्र के अनुसार अर्थ और काम दो ही पदार्थ पुरुषार्थ और विधि से माने गये हैं।

यहाँ संक्षेप से आपके प्रश्नों का उत्तर दिया गया है क्योंकि पत्रों के द्वारा पूरी व्याख्या नहीं हो सकती थी। जब कभी मेरा और आपका समागम होवे तब आपको मैं ग्रन्थों के प्रमाण और युक्तियों के साथ ठीक-ठीक निश्चय करा सकता हूँ। आपको और भी जो कुछ संदेह सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास में होवें, (मेरठ आर्यसमाज के द्वारा) लिखकर भेज दीजिये। सबका ठीक उत्तर दे दिया जावेगा। अब मैं यहाँ थोड़े दिन तक रहूँगा और यदि आप अम्बाला तक आ सकें तो मिति १७ नवम्बर, सन् १८८० तक प्रातः आठ बजे से पहले-पहले देहरादून में और उसके पश्चात् आगरे में मुझको तार द्वारा सूचना देनी चाहिये कि मैं आप से शास्त्रार्थ अर्थात् पारस्परिक बात-चीत के लिये वहां पहुंच सकूँ।

बुद्धिमान् व्यक्ति के लिये इतना ही पर्याप्त है, अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। मिति कार्तिक सुदि १३ रविवार, संवत् १९३७ ।

हस्ताक्षर दयानन्द सरस्वती (देहरादून)

फिर पं० आत्माराम जी पूज ने ८ माघ, संवत् १९३७ तदनुसार १९ जनवरी, सन् १८८१ को एक पत्र स्वामी जी के पास भेजा। जिसमें कुछ बातों को माना और कई बातों पर फिर आक्षेप किये। स्वामी जी ने उसका उत्तर भेजा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का दूसरा पत्र

मिति २१ जनवरी, सन् १८८१

आनन्द विजय आत्माराम जी !

नमस्ते। आपका पत्र ८ माघ का लिखा हुआ मेरे पास पहुंचा। लिखित वृत्तांत विदित हुआ। मेरे प्रश्नों के उत्तर में जो आपने लिखा है कि बौद्ध और जैन एक ही मत के नाम मानने से हमारी कुछ मानहानि नहीं, इसको पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। यही सज्जनों का काम है कि सत्य को मानें और असत्य को न मानें परन्तु यह बात जो आपने लिखी है कि "योगाचारादि चार सम्प्रदाय जैन बौद्ध मत के हैं सो वह बौद्धमत जैनमत से एक पृथक् शास्त्र का है।" इसका उत्तर मैं आपके पास भेज चुका हूँ कि मत में शाखाओं का भेद थोड़ी बातें पृथक् होने से होता है परन्तु मत की दृष्टि से शाखाएं एक ही मत की होती हैं। देखिये कि उन ही नास्तिकों में चार्वाकादि नास्तिक हैं। और जो आप उनका इतिहास और जीवनचरित्र पूछते हैं, सो उसका उत्तर भी मैं दे चुका हूँ अर्थात् इतिहास-तिमिरनाशक के तीसरे अध्याय में देख लीजिये।

और आप जिन बौद्धों को अपने मत से पृथक् कहते हैं, वे आपके सम्प्रदाय से चाहे पृथक् हों परन्तु मत की दृष्टि से कदापि पृथक् नहीं हो सकते। जैसे कई जैनी उदाहरणार्थ श्वेताम्बर दूसरे जैनियों जैसे समवेगी साधुओं पर आक्षेप करके उन्हें पृथक् और नया मानते हैं। यह प्रकटरूप से "होवेक" नामक पुस्तक में लिखा है। इसी प्रकार से आप लोगों ने उन पर बहुत से आक्षेप करके उनके मत में संयुक्त निर्णय पुस्तक लिखी है फिर भी इससे वह और आप बौद्ध या जैनमत से अलग नहीं हो सकते। और न कोई विद्वान् उनके धार्मिक सिद्धान्तों की दृष्टि से उन्हें अलग मान सकता है। उनकी समस्याओं में भेद तो अवश्य होगा।

आपके इस वचन से कि 'इसमें क्या आश्चर्य है कि महावीर तीर्थंकर के समय में चार्वाक मत था, उनसे पीछे नहीं हुआ।" इससे मुझको आश्चर्य हुआ।

क्या जो महावीर तीर्थंकर के पहले २३ तीर्थंकर हुए उन सबके पहले चार्वाक-मत को आप सिद्ध नहीं कर सकते। यदि किसी प्रकार का संदेह आपके लिए हो तो प्रश्नकर्त्ता पूछ सकता है कि ऋषभदेव भी चार्वाक-मत से चले हैं ? फिर आप उसके उत्तर में क्या कह सकते हैं। क्या चार्वाक १५ जातियों में से एक जाति का भी नहीं है ? और उसमें एक सिद्ध और मुक्त नहीं हुआ ? क्या वे आपके सिद्धान्तों और पुस्तकों से अलग हो सकते हैं ?

इसके अतिरिक्त आपने भी अपने लेख में बौद्धमत को अपने मत में स्वीकार कर लिया है क्योंकि करकंडा आदि को आपने बौद्ध माना है और मैंने भी अपने पहले पत्र में जैन और बौद्ध के एकमत होने का लिखित प्रमाण दे दिया है फिर आपका पुनः पूछना निरर्थक और निष्प्रयोजन है। जिस अवस्था में स्वयं वादी की साक्षी से मुकदमा ठीक सिद्ध हो जाता है तो फिर न्यायाधीश को अन्य पुरुषों की साक्षी लेनी आवश्यक नहीं होती। भला जिसकी कई पीढ़ियाँ जैनमत में चली आई हों अर्थात् राजा शिवप्रसाद की साक्षी को और वर्तमान काल में जो यूरोपियन लोग बड़े परिश्रम से इतिहास बनाते हैं उनकी साक्षी को आप गलत कह सकते हैं कि जिन्होंने अपने इतिहासों में बौद्ध और जैन को एक ही लिखा है और साथ ही यह भी लिखा है कि कुछ बातें आर्य्यों की और कुछ बौद्धों की लेकर जैनमत बना है।

दूसरे प्रश्न के बारे में जो आपने लिखा है, वह नमूची नास्तिक जैनमत का अहितचिन्तक साधुओं को निकालने और कष्ट देने वाला था, उसको मार कर सातवें नरक में भेजा गया। यह लेख आपने सत्यार्थप्रकाश के लेख के उत्तर में नहीं समझा। विचार कीजिये कि वह नमूची जैनमत का शत्रु था, इसलिए मारा गया तो क्या उसने जानबूझ कर पाप नहीं किया था। कितने खेद की बात है कि आप सीधी बात को भी उलटा समझ गये।

तीसरे प्रश्न के उत्तर में जो आपने प्राकृत भाषा का एक श्लोक लिखा है परन्तु उसके अर्थ स्वयं नहीं लिखे, केवल मेरे पर उसका समझना छोड़ दिया। उसका यह अभिप्राय होगा कि मैं उसके अर्थ तक नहीं पहुंच सकूँगा। हाँ मैं कुछ सब देशों की भाषा नहीं जानता हूँ, केवल कुछ देशों की भाषा और संस्कृत जानता हूँ परन्तु मतों और उनकी शाखाओं तथा सम्प्रदायों के सिद्धान्त अपनी विद्या और बुद्धि और विद्वानों की संगति के प्रभाव से जानता हूँ। आप और आप लोगों के पथप्रदर्शकों ने ऐसी भाषा बिगाड़ कर अपनी भाषा बना ली है जैसे धर्म का धम्म आदि। जिनका मत बौद्धिक तथा लिखित युक्तियों से सिद्ध नहीं हो सकता, वे ऐसे-ऐसे अप्रसिद्ध शब्द बना लेते हैं ताकि कोई दूसरा

उसको समझ न सके। जैसे मद्य का नाम तीर्थ, माँस का नाम पुष्पादि बना लिया है ताकि उनके अतिरिक्त कोई दूसरा न जान ले। जो राजा लोग न्याय-कारी होते हैं वे तो मार्ग ऐसे सीधे बनाते हैं कि अन्धा भी निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच जाये परन्तु उनके विरोधी मार्गों को इस प्रकार बिगाड़ते हैं कि कोई परिश्रम से भी चल न सके। आप पुस्तक "रत्नसार भाग" को विश्वसनीय नहीं समझते तो क्या हुआ, बहुत से श्रावक और जैन लोग उसको सच्चा मानते हैं।

देखिये आप ऐसे विद्वान् होकर 'मूर्ख' को 'मूर्रा' लिखते हैं, और पत्र में लिखित शब्दों के ठीक करने में बहुत सी हड़ताल भी लपेटते हैं। कैसे शोक की बात है कि संस्कृत तो दूर रही, देशी भाषा भी आप लोग नहीं जानते परन्तु इस लेख के स्थान पर यह लिखना उचित था कि आपकी भूल का कुछ नहीं क्योंकि मनुष्य प्रायः भूल किया ही करता है।

चौथे प्रश्न के उत्तर में जो कुछ आपने लिखा है, वह बहुत चकित करने वाला है। विद्या प्राप्ति की इच्छा मनुष्य वहाँ प्रकट कर सकता है जहाँ अपने से अधिक किसी विद्वान् को देखता है। मैंने भी उन्हीं विद्वानों से शिक्षा पाई है जो मुझ से अधिक बुद्धिमान् तथा विद्वान् थे। आप भी कदाचित् इसको स्वीकार करते होंगे। क्या आप लोग अन्य मत के विद्वानों को विद्वान् न समझकर शिष्य के विचार से और मोक्ष के परिणाम का ध्यान रखकर किसी विपरीत प्रयोजन की प्राप्ति की इच्छा से दान करते हो। क्या ये बातें अविद्वानों की नहीं हैं कि अपने मत और उसके साधुओं के बड़प्पन का ध्यान रखना और अन्य मत के विद्वानों के विषय में उसके विपरीत चलना। यह अच्छे लोगों की बातें नहीं हैं। निश्चयपूर्वक समस्त सृष्टि में से अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा मानना अन्वेषकों, धर्मात्माओं का काम है और उसको ही हम मानते हैं और उचित है कि आप भी इसको स्वीकार करें। मेरे लेख का अभिप्राय ठीक-ठीक आप उस समय समझेंगे जब कि मेरी और आपकी भेंट होगी। मेरी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश के लेख से कोई मनुष्य यह परिणाम नहीं निकाल सकता कि जैनमत के लोगों को चिरकाल तक कष्ट देना और दान न देना और जैनमत बेईमानी की जड़ है। प्रत्युत यह सिद्ध है कि 'अच्छे और ईमानदार लोगों और अनाथों की सहायता करना और बुरे लोगों को समझाना'।

परन्तु इन छः निषेधों का कलंक आपको ऐसा लिपट गया है कि जब ईश्वर की दया हो और आप लोग पक्षपात को छोड़कर यत्न करें तब धोया जा सकता है अन्यथा कदापि नहीं।

भला जब यह प्रकट रूप में लिखा है कि अन्य मत की प्रशंसा न करना और दूसरों को रोटी और पानी न देना तो फिर आप उसको अशुद्ध क्योंकर कर सकते हैं। ये बातें आपके हजारों ग्रन्थों में लिखी हुई हैं और आप लोग इसको समझ लें कि मुझे ऐसा स्वप्न में विचार नहीं आया है। हाँ जो आप लोग कुछ भी विचार कर देखें तो उनका छोड़ देना ही धर्म है, आगे आपकी इच्छा।

पाँचवें प्रश्न का उत्तर—उसके विषय में जो आपने लिखा है उसमें मेरे उत्तर का खण्डन नहीं हो सकता क्योंकि जब बालों के नोचने का प्रमाण आपकी पुस्तकों में लिखा है, और मैंने उसके उद्धरण से सिद्ध कर दिया। फिर भला कहीं दार्शनिक युक्तियों का आश्रय लेने से उस बात का अस्वीकार हो सकता है, कदापि नहीं।

छठे प्रश्न के उत्तर में—जब मैं यह सिद्ध कर चुका हूँ कि जैन और बौद्ध जिस मत का नाम है, उसी की शाखा चार्वाकादि हैं फिर यह कैसे अशुद्ध हो सकता है।

जो आप जैन लोगों के ग्रन्थों में हमारे धर्म के विषय में लिखा है, और जिसका हमारी धार्मिक पुस्तकों में कहीं वर्णन नहीं पाया जाता और इससे हमारे धर्म का अपमान टपकता है। इसलिए आप जैन लोगों से पूछा जाता है कि लौटती डाक से शीघ्र उत्तर दें कि वे बातें हमारी किन धार्मिक पुस्तकों में लिखी हुई हैं। ज्ञात रहे कि जिस व्याख्या और ठीक-ठीक पता दिन मान के साथ पृष्ठ व पंक्त्यादि के उद्धरण सहित मैंने आपके प्रश्नों का उत्तर दिया है। इसी प्रकार आप भी उत्तर दें अन्यथा आप सज्जनों की बड़ी हानि होगी। इस बात को आप केवल विहंगम दृष्टि से न देखें, प्रत्युत एक प्रकार की साव-धानता दृष्टिगत रखें ताकि यह लम्बी न हो जावे। उत्तर भेजने में शीघ्रता करने से कल्याण है।

'जैनियों के विवेकसार ग्रन्थ के लेख पर कुछ शंकाएं'

पहली शंका—विवेकसार, पृष्ठ १०, पंक्ति १ में लिखा है कि श्री कृष्ण तीसरे नरक को गया।

दूसरी शंका—विवेकसार, पृष्ठ ४०, पंक्ति ८ से १० तक लिखा है कि हरिहर, ब्रह्मा, महादेव, राम, कृष्णादि कामी, क्रोधी, अज्ञानी, स्त्रियों के दूषी, पाषाण की नौका के समान आप डूबते और सबको डुबाने वाले हैं।

तीसरी शंका—विवेकसार, पृष्ठ २२४, पंक्ति ९ से पृष्ठ २२५ की पंक्ति

१५ तक लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादि सब अदेवता और अपूज्य हैं।

चौथी शंका—विवेकसार, पृष्ठ ५५, पंक्ति १२ में लिखा है कि गंगादि तीर्थों और काशी आदि क्षेत्रों से कुछ परमार्थ सिद्ध नहीं होता।

पाँचवीं शंका—विवेकसार, पृष्ठ १३८, पंक्ति ३० में लिखा है कि जैन का साधु भ्रष्ट भी हो तो भी अन्य मत के साधुओं से उत्तम है।

छठी शंका—विवेकसार, पृष्ठ १ पंक्ति १ से लेकर कहा कि जैनों में बौद्धादि शाखाएं हैं। इससे सिद्ध हुआ कि जैनमत के अन्तर्गत बौद्धादि सब शाखाएं हैं। **—हस्ताक्षर स्वामी-दयानन्द सरस्वती, आगरा**

मिति माघ बदि ६, शुक्रवार, संवत् १६३७ तदनुसार २१ जनवरी, सन् १८८१

उधर स्वामी जी तो अपने योग्य पण्डित आत्माराम जी के प्रश्नों का खण्डन लिख रहे थे और आत्माराम जी भी अपने प्रश्न लिखकर जो स्वामी जी ने उनका उत्तर लिखा था, उसका उत्तर तैयार कर रहे थे कि ठाकुरदास ने बीच में अपनी हानि समझ और अपनी प्रसिद्धि कम होती जानकर स्वामी जी के नाम २२ नवम्बर, सन् १८८० को एक नोटिस जारी कर दिया।

जिसमें प्रथम तो समस्त पिछले पत्रव्यवहार का अपने विचार के अनुसार सार था और अन्त में यह सभ्यतापूर्ण शब्द लिखे थे—

"यदि आपकी अब भी क्षमा माँगने की इच्छा हो तो शीघ्र मांग लो परन्तु पीछे से यह न कहना कि जैनियों में दया और क्षमा नहीं। अब भी यदि आप अपना क्षमा-पत्र भेज दें तो आप पीछे से निर्लज्जता उठाने की आपत्ति से बच सकते हैं, नहीं तो आपको अधिकार है। आपकी आज्ञानुसार हमने अंबाला, लुधियाना इत्यादिक स्थानों के बहुत से जैनों को इस काम में अपने साथ मिला लिया है जो अपना-अपना नोटिस भी आपको देंगे और आप ने चिट्ठी-पत्री भेजने में ही इतने छल किये हैं कि इसमें भी आप पकड़ जायेंगे क्या आप झूठ लिख-लिखकर औरों को धोखे में फंसाते और मेरा नाम बदनाम करते हैं। आप स्मरण रखिये कि आपके ये सब कपट न्यायालय में प्रकट किये जावेंगे और उसका यथायोग्य दण्ड भी आपको दिलाया जावेगा। इस पत्र का उत्तर चाहे आप भेजें या न भेजें, यह आपकी इच्छा है।"

परन्तु यह नोटिस वापस आ गया। स्वामी जी को न पहुंचा क्योंकि हमारे चालाक ला० ठाकुरदास ने उसे न तो देहरादून भेजा और न आगरा प्रत्युत अंबाले भेजा। इसलिए अवश्य वापस आना ही था क्योंकि पता अशुद्ध था। यद्यपि आर्य्यसमाज गुजरांवाला ने भी उनको ठीक-ठीक पता बतला

दिया था। (देखो 'आर्य्य समाचार' पृष्ठ ३३७, खण्ड २, संख्या २३) और यदि न भी बतलाते तो स्वामी जी के पत्र से भी आत्माराम जी और उनको विदित था कि वे १७ नवम्बर के पश्चात् आगरे जायेंगे और उनका वहाँ जाना और उपदेश करना प्रत्युत शास्त्रार्थ करना 'नसीम' आगरा और 'भारती विलास' में प्रकाशित हो चुका था। इसलिए यह जान बूझ कर चालाकी थी या अनपढ़ होने के कारण आगरा का अम्बाला स्मरण रखा। धन्य है।

फिर ला० ठाकुरदास ने २१ दिसम्बर, सन् १८८१ को फार्सी अक्षरों में एक नोटिस लिखा और समाजों के नाम भेजा जिसका विषय यह था कि 'हमारे प्रश्न का उत्तर स्वामी जी के पास नहीं है इससे स्वामी जी छुपकर बैठे हैं तो आप उनका ठाँव ठिकाना बता दो। इसके उत्तर में आर्य्य-समाज की ओर से एक नोटिस जारी हुआ जिसके शीर्षक में यह शेर लिखा गया था—

'गर न बीनद बरोज शपर्रा चश्म।
चश्मये आफताब रा च गुनाह॥'

अर्थात् यदि दिन के समय में अन्धे को न दिखाई दे तो इसमें सूर्य्य का क्या दोष है।

इसमें उसकी समस्त बातों का उत्तर और स्वामी जी का पता भी लिखा हुआ था। (देखो समाचर, पृष्ठ ३३७, बुधवार) परन्तु ठाकुरदास चूँकि स्वयं पढ़ा हुआ नहीं है और कुछ ख्याति का भी इच्छुक है उसको विज्ञापन में भी पता न मिला अर्थात् न पढ़ सका।

'उन्मत्त अपने काम में चतुर होता है इस कहावत के अनुसार उसने १२ जनवरी को एक पत्र आर्यसमाज गूजराँवाला के नाम भेजा जिसमें लिखा था कि 'स्वामी जी के साथ सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए हम २०-२३ जनवरी तक अंबाला में इकट्ठे होंगे। तुम स्वामी-दयानन्द जी को अंबाला भेजो।

परन्तु स्वामी जी के लेखानुसार न तो आत्माराम जी ने उनको लिखा और न तार दिया और न आत्माराम जी शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हुए और न ठाकुरदास के अतिरिक्त किसी और विद्याप्रेमी जैन ने स्वामी जी को लिखा। इसलिए वहाँ कोई शास्त्रार्थ न हुआ क्योंकि आत्माराम जी शास्त्रार्थ से और फिर स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करने से अत्यन्त जी चुराते और घबराते थे। (दिग्विजयार्क पृ० २६–३१, लेखराम पृ० ६५०–६८०)

वैदिकधर्म तथा ईसाई मत

(फादर कानरीड साहब आगरा से धर्मचर्चा—१२ दिसम्बर, १८८०)

नोट—यह धर्मचर्चा फादर कानरीड साहब ओ० सी० बाई० रेवरेण्ड नायब बिशप सेंट पीटरसन रोमन कैथलिक चर्च आगरा और श्रीमान् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के मध्य १२ दिसम्बर सन् १८८०, रविवार तदनुसार मंगसिर शुक्ला ११, संवत् १९३७ विक्रमी को हुई।

स्वामी जी कई वकीलों और सम्मानित व्यक्तियों तथा मार्टिन साहब म्यूनिसिपल कमिश्नर सहित बिशप साहब से मिलने को गये।

स्वामी जी—नास्तिक लोग उत्पन्न करने वाले को नहीं मानते। यदि हम और आप और दूसरे मत के बुद्धिमान् लोग मिलकर और सब मतों में जो सत्य बातें हैं उनका विचार करके जिनपर सब लोग एकमत हो जावें, और आपस का मतभेद जाता रहे तो विरोध में केवल नास्तिक लोग ही रह जावेंगे। फिर उनको हम अच्छी प्रकार बौद्धिक युक्तियों के द्वारा परास्त कर देंगे। गोरक्षा जिसमें लाभ ही लाभ हैं, ऐसी श्रेष्ठ बातों में हमको और आपको और सबको मिलकर काम करना चाहिये।

बिशप साहब—यह काम अत्यन्त कठिन है इसलिये कि मुसलमान हलाल करना कभी न छोड़ेंगे। वैसे ही ईसाई लोग मांस खाना कभी न छोड़ेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि ईश्वर अवश्य है और चूंकि ईश्वर की सूरत नहीं देखी और वह बोलता नहीं है, इस कारण से यह अवश्य है कि उसने अपना एक स्थानापन्न धर्म का बतलाने वाला संसार में भेजा। जिस प्रकार महारानी विक्टोरिया बिना दूसरे के भारतवर्ष का शासन नहीं कर सकती, उसी प्रकार खुदा बिना खुदावन्द यीशु मसीह की सहायता के संसार के मनुष्यों का तथा मुक्ति का प्रबन्ध नहीं कर सकता।

स्वामी जी ने कहा कि प्रथम तो जो उदाहरण है वह ठीक नहीं क्योंकि जीव की परमेश्वर से कोई समानता नहीं। पहले ईश्वर का लक्षण होना चाहिये कि ईश्वर क्या वस्तु है। स्वामी जी ने उसके विशेषण सर्वज्ञ, अविनाशी, सर्वशक्तिमान् आदि बताये और कहा कि ऐसे गुणों वाला ईश्वर किसी के आधीन नहीं कि स्वयं प्रबन्ध न कर सके और दूसरे से सहायता लेनी पड़े। तीसरे यदि हम मान भी लें कि ईसा कोई अच्छे पुरुष थे तो भी एक मनुष्य थे। और ईश्वर न्यायाधीश है वह एक मनुष्य के कहने से अन्याय नहीं कर सकता। जैसा जिसका कर्म होगा वैसा ही फल देगा। इसलिये यह असम्भव है कि

न्यायविरुद्ध परमेश्वर किसी की सिफारिश मानकर पुण्य-पाप के अनुसार फल न देवे। अतः ईश्वर को स्थानापन्न भेजने की आवश्यकता नहीं। स्थानापन्न देना यह कार्य्य मनुष्यों का है। वह ऐसा स्वामी है कि समस्त कार्य्य और प्रत्येक प्रबन्ध बिना स्थानापन्न के कर सकता है।

बिशप साहब—क्योंकर प्रबन्ध कर सकता है?

स्वामी जी—शिक्षा अर्थात् ज्ञान के द्वारा।

बिशप साहब—वह पुस्तक ज्ञान की कौन सी है?

स्वामी जी—चारों वेद ईश्वर की ओर से प्रमाण हैं (१८ पुराणों का नाम नहीं लिया)।

बिशप साहब—क्या अठारह पुराण भी धर्मपुस्तक हैं?

स्वामी जी—नहीं।

बिशप साहब—चारों वेद कैसे आये, ईश्वर ने किसको दिये, किसने संसार में पहले समझाये?

स्वामी जी—अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, चारों ऋषियों के आत्मा में ईश्वर ने वेदों का ज्ञान दिया, उन्होंने समझाया।

बिशप साहब—वेद ईश्वर की ओर से नहीं प्रत्युत वेद का बनाने वाला एक ब्राह्मण है, जिसका नाम इस समय स्मरण नहीं रहा।

स्वामी जी—ऐसा नहीं, वेद सृष्टि की आदि में परमात्मा ने प्रकाशित किये। किसी ब्राह्मण ने इनको नहीं बनाया प्रत्युत वेद पढ़ने से मनुष्य ब्राह्मण बन सकता है और जो वेद न पढ़े वह कदापि ब्राह्मण नहीं कहला सकता।

बिशप साहब—वे चारों मर गये या जीवित हैं?

स्वामी जी—मर गये हैं।

बिशप साहब—उनके पश्चात् उनका स्थानापन्न कौन हुआ और एक के पश्चात् कौन स्थानापन्न होता रहा और अब कौन है?

स्वामी जी—हजारों लाखों ऋषि मुनि उनके स्थानापन्न होते रहे। जैसे छः शास्त्रों के कर्ता छः ऋषि, उपनिषदों तथा ब्राह्मणों के लेखक ऋषि मुनि लोग। उनके अतिरिक्त प्रत्येक काल में जो ऋषियों के निश्चित नियमों के अनुसार चले, शुद्धाचारी हो वही स्थानापन्न हो सकता है परन्तु आप बतलाइये ईसा के पश्चात् आपके यहाँ अब तक कौन हुआ?

बिशप साहब—हमारे यहाँ ईसा के पश्चात् रोम का पोप अर्थात्

उच्चतम पादरी ईश्वर का स्थानापन्न समझा जाता है। जो भूल हम लोगों से हो जाये उसका सुधार उच्चतम पादरी अर्थात् रोम के पोप द्वारा होता है।

स्वामी जी—और जो भूल रोम के पोप से हो उसका सुधार किस प्रकार हो सकता है? आपको पोप के अत्याचार और धार्मिक झगड़े जो लूथर के काल से पहले और उस समय होते थे और कुछ अब तक जारी हैं, भली प्रकार विदित होंगे और इसी प्रकार ईसाइयों की पहली सभाओं का वृत्तान्त और धार्मिक झगड़े और सार्वजनिक हत्याएं आपसे छुपी न होंगी। उनका सुधार किस प्रकार वह पोप जो स्वयं उनका आरम्भकर्ता है और जो स्वयं उन रोगों में फंसा हुआ है, कर सकता है? यह बात ठीक वैसी ही है जिस प्रकार हमारे पोप पौराणिक लोगों की।

विशप साहब इसका कोई बुद्धिपूर्वक और युक्तियुक्त उत्तर जिसमे स्वामी जी और श्रोताओं का सन्तोष हो, न दे सके। तत्पश्चात् लगभग १२ बजे के समय स्वामी जी एक बड़ा गिर्जा देखने के लिये चले गये। (ले० पृ० ६६१-६६३)

विविध विषय

(पं० लेखराम जी द्वारा किये हुए प्रश्नों का उत्तर—१७ मई, १८८१)

आर्यपथिक पं० लेखराम जी अपने बनाये हुए महर्षि के जीवन-चरित्र में लिखते हैं—

११ मई, सन् १८८१ को संवाददाता पेशावर से स्वामी जी के दर्शनों के निमित्त चलकर १६ की रात को अजमेर पहुंचा। और वहां पहुंचकर स्टेशन के समीप वाली सराय में डेरा किया। और १७ मई को प्रातःकाल सेठ जी के बागीचे में जाकर स्वामी जी का दर्शन प्राप्त किया। उनके दर्शन से मार्ग के समस्त कष्टों को भूल गया और उनके सत्योपदेशों से समस्त समस्याएं सुलझ गईं। जयपुर के एक बंगाली सज्जन ने मुझ से प्रश्न किया था कि आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी, दो व्यापक किस प्रकार इकट्ठे रह सकते हैं?

मुझसे इसका कुछ उत्तर न बन पाया। मैंने यही प्रश्न स्वामी जी से पूछा। उन्होंने एक पत्थर उठाकर कहा कि इसमें अग्नि व्यापक है या नहीं?

मैंने कहा कि व्यापक है।

फिर पूछा कि मिट्टी? मैंने कहा कि व्यापक है।

फिर पूछा कि जल? मैंने कहा कि व्यापक है।

फिर पूछा कि आकाश और वायु? मैंने कहा कि व्यापक है।

फिर पूछा कि परमात्मा ? मैंने कहा कि वह भी व्यापक है ।

कहा कि देखा कितनी चीजें हैं परन्तु सब इसमें व्यापक हैं। वास्तव में बात यह है कि जो जिससे सूक्ष्म होती है वह उसमें व्यापक हो सकती है। ब्रह्म चूंकि सबसे अति सूक्ष्म है इसलिये सर्वव्यापक है, जिससे मेरी शान्ति हो गई ।

मुझ से उन्होंने कहा कि और जो तुम्हारे मन में सन्देह हों सब निवारण कर लो मैंने बहुत सोच विचार कर दश प्रश्न लिखे जिनमें से आठ मुझे स्मरण हैं, शेष भूल गये ।

प्रश्न—जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइये ?

उत्तर—यजुर्वेद का ४० वाँ अध्याय सारा जीव-ब्रह्म का भेद बतलाता है ।

प्रश्न—अन्य मत के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिये या नहीं ?

उत्तर—अवश्य करना चाहिये ।

प्रश्न—विद्युत् क्या वस्तु है और किस प्रकार उत्पन्न होती है ?

उत्तर—विद्युत् सर्वत्र है और रगड़ से उत्पन्न होती है। बादलों की विद्युत् भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है ।

मुझ से कहा कि २५ वर्ष से पूर्व विवाह न करना। कई ईसाई और जैनी प्रश्न करने आते परन्तु शीघ्र निरुत्तर हो जाते थे। (लेखराम पृ० ५३२)

जैनमत

(जैन साधु सिद्धकरण जी से मसूदा में शास्त्रार्थ—६ जौलाई से १६ जौलाई, १८८१ तक)

जब आषाढ़ बदि १२, संवत् १९३८ तदनुसार २३ जून, सन् १८८१ को स्वामी जी धर्मोपदेश के निमित्त मसूदा पधारे तो कई दिन तक निरन्तर व्याख्यान देने के पश्चात् ५ जौलाई, सन् १८८१ को राव बहादुरसिंह साहब रईस मसूदा ने अपनी रियासत के सम्मानित जैनियों को बुलाकर कहा कि तुम अपने किसी विद्वान् पण्डित या मतावलम्बी को बुलाओ ताकि उससे स्वामी जी का शास्त्रार्थ कराया जावे और सत्यासत्य का निर्णय हो ।

जैनियों ने उत्तर दिया कि हम अपने साधु सिद्धकरण जी को बुलाते हैं, वे स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे ।

रावसाहब ने कहा कि वे कहाँ हैं ? जैनियों ने उत्तर दिया कि वे ग्राम

आवे आँगन टेढ़ा । हस्ताक्षर—स्वामी दयानन्द

यह उपर्युक्त पत्र १६ जौलाई, सन् १८८१ को पण्डित वृद्धिचन्द, जगन्नाथ जोशी, व्यास रामनारायण, बाबू बिहारीलाल तथा अन्य सर्दार लोगों के हाथ स्वामी जी ने साधु जी की ओर भेजा। जब वे लेकर चले तो उस समय लगभग दो सौ मनुष्यों के इकट्ठे हो गये थे। इन्होंने पहुंचते ही साधु जी को उक्त पत्र पढ़ सुनाया और निवेदन किया कि अब आप इसका फिर उत्तर दीजिये। परन्तु पाठकगण! उत्तर देने में तो विद्या चाहिये। न जाने पहले किस की सहायता से उत्तर लिखा था। विशेष क्या लिखूं साधु जी के छक्के छूट गये।

अन्त को उन लोगों ने जब बहुत कहा सुना तब यही मुख से निकला कि हमारे से तो उत्तर कोई नहीं बन आता। आपां तो साधु हैं। जब लोगों ने देखा कि अब साधु जी ने ही अपने मुख से हार मान ली तो अब विशेष कहना उचित नहीं, यह समझकर नमस्ते करके चले आये और सब वृत्तान्त राव साहब और स्वामी जी से निवेदन कर अपने-अपने स्थानों को चले गये।

हस्ताक्षर—वृद्धिचन्द श्रीमाल, मसूदा

("देश हितैषी" खंड १, संख्या ६, संवत् १९३५ आश्विन, पृष्ठ १२ से १५ तक।)
(दिग्विजयार्क पृ० ३१, लेखराम पृ० ६७५ से ६८०)

ईसामसीहा पर विश्वास

(मसूदा में बिहारीलाल ईसाई से शास्त्रार्थ—जौलाई, १८८१)

श्रावण शुक्ला ४, सं० १९३८ अर्थात् ३० जुलाई, सन् १८८१ को पूर्वोक्त बाबू बिहारीलाल ईसाई पुनः महाराज से मिलने आये। थोड़ी देर बातचीत होने के पश्चात् धर्म-विषय में वार्तालाप होने लगा। इस पर राव साहब ने उनसे कहा कि आप पादरी शूलब्रेड के शिष्य हैं और मैं स्वामी जी महाराज का, आज मेरा और आपका संवाद होगा। इसे बिहारीलाल ने स्वीकार कर लिया। राव साहब ने उनसे प्रश्न किया कि बाइबिल में लिखा है कि ईसामसीह ने एक बार उपदेश में कहा कि यदि आप लोगों में राई बराबर विश्वास हो तो इस पहाड़ को चलायमान कर सकते हो। अतः यदि आपका विश्वास पूरा है तो इस (सोहन नगरी) पहाड़ को अपनी जगह से हटा दो। पादरी साहब कुछ उत्तर न दे सके। और अन्त में उन्होंने यह कहकर पीछा छुड़वाया कि इसका उत्तर मैं अब नहीं दे सकता, पादरी शूलब्रेड से पूछकर उत्तर दूंगा। (लेखराम पृ० ६८९-६९०)

मुसलमान दासी-पुत्र

(मसूदा में काजी जी से वार्त्तालाप—अगस्त, १८८१)

२७ अगस्त, सन् १८८१ अर्थात् भाद्रपद शुक्ला को मुसलमानों की ईदुल-

फित्र (रोजों की ईद) थी। काजी जी भी आ गये थे। २८ अगस्त को महाराज प्रातःकाल ८ बजे भ्रमण करके लौटे ही थे कि उन्होंने यवनों का झुण्ड अपने निवास स्थान की ओर आते देखा। उन्होंने चाँदमल कोठारी राज्य मसूदा को, जो उनके साथ मसूदा से आये थे, बुलाया और कहा कि देखो क्या बात है, ये लोग क्यों आ रहे हैं वे नीचे गये और यवन समुदाय के नेता से वृत्त ज्ञात करके स्वामी जी से कहा। उन्होंने कहा कि ऊपर बुलाओ। महाराज कुर्सी पर बैठ गये और वे लोग फर्श पर बैठ गये। आते ही काजी जी से निम्न प्रश्नोत्तर हुए—

काजी—आप हमें दासी-पुत्र कैसे बतलाते हैं ?

स्वामी जी—अपने कुरानशरीफ को देखो। इब्राहीम की दो स्त्रियाँ थीं एक विवाहिता सारा, दूसरी दासी हाजिरा, जिसे उन्होंने घर में डाल लिया था ......अतः आपके दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है ?

काजी—कुरान में ऐसा नहीं लिखा।

स्वामी जी—(रामानन्द ब्रह्मचारी से कुरान की पुस्तक मंगाकर) देखिये, सूरा अनकबूत में लिखा है कि उसी साल (खुदा ने) उसे (इब्राहीम को) हाजिरा (के गर्भ) से जो सारा की दासी थी, इस्माईल प्रदान किया।

काजी—वह दासी तो थी, परन्तु निकाह कर लिया था।

स्वामी जी—फिर भी वह वास्तव में दासी ही तो थी, फिर आपके दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है ?

इस पर काजी जी निरुत्तर हो गये और मुसलमान देखते के देखते रह गये।*

(देवेन्द्रनाथ २। २७८)

कबीर पन्थ

(कबीर पन्थी साधु के साथ मसूदा में धर्मचर्चा—अगस्त, १८८१)

अगस्त, सन् १८८१ के पहले सप्ताह में एक दिन एक साधु कबीरपंथी ब्यावर से स्वामी जी के पास मसूदा में आया और परस्पर धर्मचर्चा होने लगी।

स्वामी जी—आपके मत के कितने ग्रन्थ हैं ?

साधु जी—हमारे २४ करोड़ पुस्तक हैं।

स्वामी जी—यह बात मिथ्या है क्योंकि इतने ग्रन्थों की संख्या और रखने को कितना स्थान चाहिए (इस पर भी साधु जी कुछ न बोले)।

तब स्वामी जी ने फिर कहा कि तुम्हारे कबीर कौन थे और जब तुम

*इस शास्त्रार्थ का लेखरामलिखित विस्तृत विवरण पृ० २४१ पर भी है।

कबीरमत में होते हो तब उनकी प्रशादी और गुरु का उच्छिष्ट भी खाते हो कि नहीं ?

साधु जी—उच्छिष्ट खाते हैं। कबीर का जन्म नहीं है, अजन्म है। उसके माँ बाप भी नहीं।

स्वामी जी—कबीर जी काशी में कुकर्म से उत्पन्न हुए थे। इस कारण उसकी माँ ने उसे बाहर फेंक दिया था। उसी समय वहां पर (जहाँ पर कबीर पड़ा था) एक मुसलमान जुलाहा आ निकला। वह कबीर को उठाकर घर ले गया और अपना पुत्र सा जान उसको पाला और बड़ा किया। अब देखिये कि उसका जन्म भी हुआ और माँ बाप भी ठहरे।

साधु जी इस बात को सुनकर चुप रहे और कुछ उत्तर न दिया फिर और विषय पर बातें होती रहीं।("देश हितैषी", खंड १, संख्या ८, पृष्ठ ६, ७)
(लेखराम पृष्ठ ५४६)

क्या मुसलमान दासीपुत्र हैं

(काजी जी रायपुर से प्रश्नोत्तर—२८ अगस्त, १८८१)

१६ अगस्त, सन् १८८१, शुक्रवार दिन के आठ बजे स्वामी जी रायपुर पधारे और नगर के बाहर पहुंच कर माधोदास की वाटिका में जिसके द्वार पर एक महल है और स्वामी के उतारने के लिए साफ कराया गया था, आनकर ठहरे। उस समय बूंदाबादी हो रही थी।

स्वामी जी के पधारने की सूचना जब ठाकुर हरिसिंह जी को हुई तब वे अपने बन्धुजन और दर्बारियों समेत दर्शन करने के लिए आये। एक अशर्फी और पाँच रुपया भेंट कर हाथ जोड़ खड़े रहे। स्वामी जी ने पूछा कि आप प्रसन्न तो हैं ? उत्तर दिया कि हाँ आज आपके दर्शन से प्रसन्न हूँ। फिर सब यथायोग्य बैठ गए।

फिर स्वामी जी ने प्रश्न किया कि आपके यहाँ राजमन्त्री कौन हैं ? ठाकुर साहब ने उत्तर दिया कि शेख इलाहीबख्श हैं परन्तु वे जोधपुर गये है, उनके भतीजे करीमबख्श जी उनके पीछे सारे काम का प्रबन्ध करते हैं और बतलाया कि वे बैठे हैं। तब महाराज ने कहा कि "आपके यहाँ मुसलमान मंत्री हैं, ओहो, ये तो दासीपुत्र हैं। आर्य पुरुषों को उचित है कि यवनों को अपना राजमंत्री न बनावें।" ऐसा कहने से करीमबख्श और ५-७ मुसलमान जो वहाँ उपस्थित थे, क्रोध में आकर गुड़गुड़ाने लगे और ठाकुर साहब भी स्वामी जी से आज्ञा लेकर अपने राजमहलों में चले गये। और मुसलमानों ने शेख जी

की हवेली में इकट्ठे होकर यह विचार किया कि उन्होंने हम को दासी का पुत्र बताया। इसलिये उनसे फौजदारी (लड़ाई) करनी चाहिए। जिस पर किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ किन्तु एक चमनू खाँ मुसलमान ने कहा कि मेरी बात मानो और पहले कुछ न करो। पाँच सात दिन पश्चात् जब रमजान की ईद पर काजी जी आवेंगे तो उनको ले जाकर स्वामी जी से प्रश्नोत्तर करायेंगे। यदि झूठे होंगे तो फिर ऐसा ही करेंगे। यह बात सब ने स्वीकार की।

२७ अगस्त, सन् १८८१ को ईदउल् फित् पर काजी जी आये और २८ अगस्त, सन् १८८१, रविवार तदनुसार भादों सुदि ४ को जब प्रातःकाल स्वामी जी आठ बजे के समय बाहर से घूमकर आये तो यवनों का झुण्ड अपने मकान की ओर आते देखा। स्वामी जी ने मुझको पुकारा कि कोठारी जी! ऊपर आओ। मैं ऊपर गया, कहने लगे कि देखो कदाचित् यवनों का समूह आता है। मैंने नीचे आनकर मुसलमानों को आते देखा। उनको नीचे ठहराकर स्वामी जी से जाकर कहा कि यहाँ आते हैं। महाराज दुग्धपान करके कुर्सी बिछवा कर स्वयं बैठ गये और उनको बुलवाया और फर्श पर बिठा दिया। आते ही काजी जी ने प्रश्न किया—

आप हम को दासीपुत्र कैसे बतलाते हो ?

स्वामी जी—अपने कुरान शरीफ को देखो। इसराईल जिसको इब्राहीम कहते हो उसकी दो पत्नियाँ थीं—एक ब्याही हुई "सारा", दूसरी दासी "हाजरा"। जिसको उसने घर में डाला हुआ था। ब्याही हुई केवल सारा थी। अब देखिये कि सारा से अंग्रेज लोग और हाजरा से तुम लोग उत्पन्न हुए, फिर दासी पुत्र होने में क्या सन्देह है ?

काजी जी—कुरान में ऐसा नहीं लिखा।

स्वामी जी ने रामानन्द ब्रह्मचारी को कहा कि कुरान का पुस्तक लाओ। पुस्तक लाकर काजी जी को दिखलाया (कुरआन सूरसे अन्कबूत—उसी वर्ष में इसमाईल को हाजरा ने उत्पन्न किया जो सारा खातून की दासी थी। खंड २, पृष्ठ १६७)।

काजी जी—वह दासी तो थी परन्तु निकाह (विवाह) कर लिया था।

स्वामी जी—फिर भी वास्तव में दासी ही है तो फिर आपके दासी पुत्र होने में क्या सन्देह है।

इस पर काजी जी निरुत्तर हो गए। मुसलमान सब देखते के देखते रह गए।

तब कुरान को स्वामी जी ने हाथ से पृथ्वी पर रख दिया।

काजी जी ने कहा—आपने यह क्या किया कि कुरान को पाँव में रख दिया।

स्वामी जी—काजी साहब! तनिक विचार करो, क्या काजी नाम ही के कहलाते हो। कागज और स्याही कैसे बनती है, और छापाखाने में किस पर कागज छपते हैं, और कलम (लेखनी) क्या चीज है और कहाँ उत्पन्न होती है। इस पर निरुत्तर होकर काजी जी उठ खड़े हुए और उनके साथी सब यवन शान्त होकर चले गये। (लेखराम पृष्ठ ५४७ से ५४८)

परमात्मा विषय

(श्री मान् राजा गोविन्दसिंह जी बहादुर बनेड़ा नरेश के प्रश्नों का उत्तर—अक्टूबर, सन् १८८१)

प्रश्न—जीव, आत्मा और परमात्मा क्या है और उनमें क्या भेद है?

उत्तर—जीव और आत्मा को तो हम एक ही मानते हैं और परमात्मा परमेश्वर उससे न्यारा है। हमने गीता के दो श्लोक पढ़े—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥

स्वामी जी ने कहा गीता प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है। हम गीता को प्रामाणिक नहीं मानते। (लेखराम पृ० ५५०)

ईसाईमत

(बम्बई में रेवरेण्ड जौसेफ कोक पादरी से शास्त्रार्थ—१८ जनवरी, १८८२)

रेवरेण्ड जौसेफ कोक ने बम्बई टाउनहाल में १७ जनवरी सन् १८८२ को एक व्याख्यान दिया जिसमें उसने बतलाया कि केवल ईसाईमत सच्चा और ईश्वर की ओर से है और यह समस्त भूमण्डल पर फैलेगा, शेष कोई मत ईश्वर की ओर से नहीं।

स्वामी जी ने एक चिट्ठी लिखी। जिसका अंग्रेजी अनुवाद कर्नल अलकाट ने स्वामी जी के सामने करके महाराज के हस्ताक्षर कराने के पश्चात् पादरी साहब की सेवा में भेज दिया। अगले रविवार को साढ़े पांच बजे का समय

फ्राम जी, काऊस जी, इन्स्टीट्यूट में शास्त्रार्थ के लिए नियत किया किन्तु पादरी कोक ने एक कोरा उत्तर पत्र के द्वारा कि "मैं चुनौतियों को स्वीकार नहीं करता हूँ क्योंकि इनका प्रकट उद्देश्य अविश्वास को फैलाना है" अपना पिण्ड छुड़ाया। (लेखराम पृ० ६६०)

रामस्नेही मत

(शाहपुरा में रामस्नेहियों से प्रश्नोत्तर—मार्च, १८८२)

शाहपुरा में रामस्नेहियों का एक मेला था। उसमें व्यावर के कुछ रामस्नेही वैश्य आए हुए थे। एक दिन वे महाराज का व्याख्यान सुनने के लिए आए। उस समय तक व्याख्यान आरम्भ नहीं हुआ था, वे महाराज को राम-राम करके बैठ गये। महाराज ने उसका उत्तर 'नमस्ते' शब्द से दिया। थोड़ी देर बाद महाराज ने पूछा कि तुम लोग इतने दिन से राम-राम जपते हो, इससे क्या लाभ है? उन्होंने कहा पहले नाम पीछे नामी, जैसे हम ने पहले आपका नाम सुना और पीछे ढूँढते-ढूँढते आपको पा लिया, जैसे पहले काशी कहते-कहते और पीछे ढूंढते ढूंढते मनुष्य काशी पहुंच जाता है, ऐसे ही राम-राम कहते-कहते मनुष्य पीछे राम को पा लेता है। महाराज ने उत्तर दिया कि मैंने तो कभी पहले तुम्हारा नाम नहीं जपा, परन्तु फिर भी मैंने तुम्हें अपने सम्मुख बैठे पा लिया। केवल नाम लेने से परमेश्वर नहीं मिल सकता। उसके लिये साधन करना आवश्यक है। केवल लड्डू कहने से ही लड्डू नहीं मिल सकता, उसके लिये उपयुक्त साधन करना होता है। ये बातें हो ही रही थीं कि पाँच छः वर्ष के बालक जो इन वैश्यों की गोद में बैठे हुए थे, हठात् उठकर कहने लगे बाबा जी! स्वामी जी सच कहते हैं। लड्डू-लड्डू कहने से क्या लड्डू मिल सकते हैं? यह सुनकर सब लोग विस्मित हो गए। तब महाराज ने कहा कि ये बालक पक्षपाती नहीं हैं, इन्होंने किसी के कहने से ऐसा नहीं कहा। अब इन बालकों की सरलोक्तिपूर्ण मध्यस्थता से हमारे तुम्हारे शास्त्रार्थ की सुन्दर मीमाँसा हो गई। (देवेन्द्रनाथ २। ३१९)

निस्सन्देह कौन होते हैं

(शाहपुरा में राजपुरोहित से वार्त्तालाप—मार्च, १८८२)

रविवार को महाराज वेदभाष्य का कार्य नहीं किया करते थे। एक रविवार को राजपुरोहित छविमल व्यास महाराज के पास आये और 'नमो नारायण' कहकर बैठ गए। महाराज ने उनका 'नमस्ते' शब्द से अभिवादन

किया और कहा कि आइये, आज हमारी छुट्टी है और आप से शास्त्रचर्चा करने की सुविधा है। व्यास जी ने कहा कि छुट्टी-मुक्ति तो हमारे लिए हो सकती है क्योंकि हम संसार-बन्धन में बद्ध हैं। आप तो संसार-बन्धन में ही नहीं, फिर आपकी छुट्टी वा मुक्ति कैसी? महाराज ने कहा कि हमारी वेद-भाष्य के कार्य से छुट्टी है। व्यास जी ने कहा कि वेदभाष्य धर्म-कार्य से छुट्टी कैसी? महाराज ने कहा कि धर्मकार्य से नहीं, वेद-भाष्य के कार्य से छुट्टी है। फिर महाराज ने कहा कि कोई शङ्का-सन्देह हो तो कहिये। व्यास जी ने उत्तर दिया कि हम तो निःसन्देह हैं, हम किसी शङ्कासन्देह के निवारण करने के लिए आपके पास नहीं आये, हम तो केवल आपसे मिलने के लिए आये हैं। महाराज ने कहा कि निस्सन्देह तो दो ही प्रकार के लोग हो सकते हैं।

यश्च मूढतमो लोको यश्च बुद्धेः पारंगतः।
द्वौ हीमौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः॥

अर्थ—दो ही प्रकार के लोग सुख भोगते हैं एक तो वह जो अत्यन्त मूढ़ हों, दूसरा वह जो परम बुद्धिमान् हो, दोनों के बीच के लोग क्लेश पाते हैं।

आप इन दोनों में कौन हैं? व्यास जी ने इस प्रश्न का कोई उत्तर न दिया, परन्तु थोड़ी देर पीछे कहा कि आप जो समझें, आप तो बुद्धिमान् ही हैं।

(देवेन्द्रनाथ २। ३२०)

मूर्त्तिपूजा

(शाहपुरा में बिहारीलाल से प्रश्नोत्तर—मार्च, १८८२)

बिहारीलाल नामक एक विद्यार्थी थे। उन्होंने महाराज से तीन प्रश्न किये—

प्रश्न १—पाणिनि की अष्टाध्यायी के तीसरे अध्याय के दूसरे पाद के १७७ वें सूत्र **"भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिजुपृग्रावस्तुवः क्विप्"** में ग्राव-स्तुति अर्थात् पत्थर की स्तुति प्रतिपादित की गई है।

प्रश्न २—पाणिनि के एक सूत्र का उल्लेख करके कहा कि इससे शिव, स्कन्द, विष्णु प्रभृति की मूर्ति सिद्ध होती है।

प्रश्न ३—ईश्वर सर्वव्यापक है वा नहीं?

महाराज ने इन प्रश्नों के उत्तर क्रमशः इस प्रकार दिये—

उत्तर १—स्तुति अनेक वस्तुओं की होती है। जैसे कारीगर कहते हैं कि

यह पत्थर उत्तम है, यह काष्ठ उत्तम है। ग्रावा के अर्थ पत्थर अवश्य हैं, परन्तु इससे पत्थर की सिद्धि नहीं होती।

उत्तर २—उस समय शिव, विष्णु आदि मनष्य के नाम होते थे। विदेश आदि जाने पर उनकी मूर्तियाँ रक्खी जाती थीं, परन्तु इससे शिव, विष्णु आदि की पूजासिद्ध नहीं होती।

उत्तर ३—परमेश्वर सर्वव्यापक है।

इस पर बिहारीलाल ने कहा कि तो फिर मैं प्रस्तरादि में ईश्वर को व्यापक समझ कर उसकी पूजा कर सकता हूँ।

महाराज ने उत्तर दिया कि तुम्हारी झाँझ, घण्टे आदि और तुम्हारी वाणी, गले आदि में भी ईश्वर है। तो तुम ईश्वर के एक अंश को आहत कर के (घण्टा, घड़ियाल बजाकर) उसके दूसरे अंश (प्रस्तरादि) की पूजा करते हो, यह क्या बात है? और यदि तुम पत्थर में यथार्थ रूप से ईश्वर-बुद्धि करके पत्थर को पूज सकते हो तो बालू को शर्करा समझ कर भोजन क्यों नहीं करते?

बिहारीलाल ने महाराजा की इस प्रकार की युक्तियाँ सुनकर मूर्तिपूजन करना त्याग दिया और वह महाराज का शुद्ध चित्त से अनुयायी हो गया।

(देवेन्द्रनाथ २। ३२०)

अनेक विषय

(मुन्शी इन्द्रमणि जी के शिष्य ला० जगन्नाथदास की बनाई आर्य-प्रश्नोत्तरी की समालोचना—अप्रैल, १८८२)

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र विज्ञापन संस्करण २

पृष्ठ ३४४ से उद्धृत

श्रीयुत संपादक देशहितैषी महाशय मन्त्री आर्य समाज अजमेर समीपेषु।

प्रिय सम्पादकवर! जो मनुष्य स्वार्थ बुद्धि छोड़ परमार्थ करने में प्रवृत्त नहीं होता, उसका हृदय पूर्ण शुद्ध होना असम्भव है। चाहे वह बहुत युक्ति और गूढ़ता अपनी कपटता को प्रसिद्ध करने में कैसा ही यत्नवान् क्यों न हो। उसका कपट कभी न कभी प्रकाशित हो ही जाता है। प्रत्यक्ष दृष्टान्त देख लो कि लाला जगन्नाथदास मुन्शी इन्द्रमणि जी के शिष्य की बनाई हुई (आर्य-प्रश्नोत्तरी) की समालोचना करने से (बहुत से विषय उसमें सत्य और परोपकारक दीख पड़ते हैं परन्तु बहुधा विषय उसमें ऐसे भी हैं कि जिनके सुनने वा पाठ करने वालों का भ्रमजाल में फंस वेदादि सत्य शास्त्रों से विरुद्ध होना सम्भव है।

यह विरुद्ध विषय केवल लाला जगन्नाथदास ही के अभिप्राय से नहीं किन्तु मुन्शी इन्द्रमणि भी उन दोषयुक्त विषयों के अनुयायी प्रतीत होते हैं।) अस्तु, जो हो मुझ को सत्य-सत्य परीक्षा इस ग्रन्थ की करके दोषों का प्रकाश करना अवश्य है। कारण सज्जन लोग गुण ग्रहण कर दोषों को छोड़ दें। इतना ही नहीं किन्तु जैसे विषयुक्त उत्तमान्न का बुद्धिमानों को त्याग करना अवश्य होता है, इसी प्रकार आर्य लोगों के लिए यह (आर्य प्रश्नोत्तरी) ग्रन्थ गुणों के साथ दोष-दायक होने से श्रेष्ठ को त्याग के योग्य है। अब इसका कुछ थोड़ा सा नमूना संक्षेप से दिखलाता हूँ।

[आर्य प्रश्नोत्तरी पृष्ठ २। प्रश्नोत्तर ७] "परमात्मा ने सृष्टि की आदि में श्री ब्रह्मा जी के हृदय में वेदों का प्रकाश किया। उन से ऋषि मुनि अस्मदादिकों को प्राप्त हुए।"

[समीक्षा] यह बात प्रमाण करने योग्य नहीं, क्योंकि (अग्नेर्वै ऋग्वेदो ऽजायत (ऽजायत) वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः) शतपथ ब्राह्मण वचन।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयंब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्धचर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्॥

मनुस्मृति का वचन। अव देखिये अग्नि आदि महर्षियों से ऋग्वेदादि का प्रकाश हुआ। इत्यादि ब्राह्मण वचनों के अनुसार मनु जी महाराज कहते हैं ब्रह्मा जी ने अग्न्यादि महर्षियों के द्वारा वेदों की प्राप्ति की। अतएव "यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" इस श्वेताश्वतरोपनिषद् के वचनार्थ की संगति शतपथ और मनु जी के वचन से अविरुद्ध होनी चाहिए। किन्तु परमात्मा ने चारों महर्षियों के द्वारा श्री ब्रह्मा जी को चार वेदों की प्राप्ति कराई। और अब भी जो कोई चार वेदों को पढ़ता है वही यज्ञ में ब्रह्मासन को प्राप्त और उसी का नाम ब्रह्मा भी होता है। यदि मुन्शी इन्द्रमणि जी और उनके शिष्य लाला जगन्नाथदास वेद और तदनुयायी ब्राह्मणादि ग्रन्थों को पढ़े होते तो ऐसे भारी भ्रम में न पड़ते ऐसे अन्यथा भाषण वा लेख क्यों करते ? इनको उचित है कि अपना हठ छोड़ सत्य का ग्रहण करें।

---

१. जब मुन्शी इन्द्रमणि ने सहायता में आए हुये धन का पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार पूर्ण ब्यौरा न बताया और न छापा, तब श्री स्वामी जी ने उन सबसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। तब मुन्शी जी ने आर्य प्रश्नोत्तरी (संवत् १९३८ आर्य दर्पण प्रेस शाहजहाँपुर में छापी। उसका उत्तर लिखवा कर श्री स्वामी जी ने भारत सुदशा प्रवर्तक में छपने के लिए भेजा।

(पृष्ठ ३ । प्रश्नोत्तर १६) "जीव वास्तविक अनन्त है। इस कारण ईश्वर के ज्ञान में भी अनन्त ही है।"

(समीक्षा) जब जीव देश काल वस्तु अपरिछिन्न अर्थात् भिन्न-भिन्न हैं। उनको अनन्त कहना मानो एक अज्ञानी का दृष्टान्त बनना है। अनन्त तो क्या, परन्तु परमेश्वर के ज्ञान में असंख्य भी नहीं हो सकते। परमेश्वर के समीप तो सब जीव वस्तुत: अतीव अल्प हैं। जीवों की तो क्या परन्तु प्रति जीव के अनेक कर्मों के भी अन्त और संख्या को परमेश्वर यथावत् जानता है। जो ऐसा न होता तो वह परब्रह्म जीव और उनके कर्मों का जैसा-जैसा जिस-जिस जीव ने कर्म किया है उन उन का फल न दे सके। जब कोई इनसे प्रश्न करे कि एक-एक जीव अनन्त हैं वा सब मिल के ? जो एक-एक अनन्त हैं तो "य आत्मनि तिष्ठन्" इत्यादि ब्राह्मण वचन अर्थात् जो परमात्मा व्याप्य जीवों में व्यापक हो रहा है और ऐसा ही लाला जगन्नाथदास ने "पृष्ठ ५ प्रश्नोत्तर ३२" के उत्तर में लिखा है कि "जीवेश्वर का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध और "पृष्ठ ४, प्र० २१ में जीव को अणु माना है। जीव शरीर को छोड़ दूसरे शरीर में जाता और शरीर के मध्य में रहता है। इसलिए अनन्त वा असंख्य ईश्वर के ज्ञान में नहीं। किन्तु जीवों के ज्ञान में जीव असंख्य हैं। जिन लाला जगन्नाथदास वा मुन्शी इन्द्रमणि जी को अपने ग्रन्थस्थ पूर्वापर विरुद्ध विषयों का ज्ञान भी नहीं है तो आगे क्या आशा होती है। इसी से इनके सब प्रपंचों का उत्तर समझ लेना शिष्टों को योग्य है।

(पृष्ठ ४, प्र० २४) "जीव के गुण वास्तव में विभु हैं, परन्तु बृद्धावस्था में अविद्या से आच्छादित होने से परिछिन्न हैं। मुक्तावस्था में विभु हो जाते हैं।"

(समीक्षा) विभु गुण उसी के होते हैं जो द्रव्य भी विभु हो। और जिसको अणु मानते हैं क्या उसके गुण विभु हो सकते हैं ? क्योंकि गुणों का आधार द्रव्य होता है। भला कोई कह सकता है कि परिछिन्न द्रव्य में विभु गुण हों। क्या गुणी देशी और गुण विभु हो सकते हैं ? और गुणी को छोड़ केवल गुण पृथक् भी रह सकता है ? नहीं ! नहीं !! और जो (पृष्ठ ४१ प्रश्नोत्तर २१ में) जीव को अणु माना है। वह भी ठीक नहीं। क्योंकि एक अणु में भी जीव रह सकता है। अर्थात् एक अणु में अनेक जीव रह सकते हैं। देखो अणु अणु काँच वा पृथ्वी आदि के मध्य में से पार नहीं जा सकता और जीव जा सकता है। इसलिए जीव अणु से भी सूक्ष्म है और इसके अणु भी विभु नहीं। हाँ मुक्तावस्था में जिस ओर उसका ज्ञान होगा उस दूरस्थ पदार्थ को भी अपने ज्ञान से जान लेता है। नहीं तो

"युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्" इस न्याय शास्त्र के सूत्र का अर्थ ही नहीं घट सकेगा। जो एक क्षण में एक पदार्थ को जाने अनेक को नहीं, उसी को मन कहते हैं। वही मन मुक्तावस्था में भी रह जाता। पुन: उसी मनरूप साधन से विभु गुण वाला जीव कैसे हो सकता है।

(पृष्ठ ४ प्रश्न २५) "जीव परतन्त्र है।"

(समीक्षा) जीव किसके आधीन है? जो कहो कि परमेश्वर के तो जो कुछ जीव कर्म करता है वह स्वतन्त्रता से वा ईश्वराधीनता से? जो ईश्वराधीनता से करता है तो जीव को पाप पुण्य का फल न होना चाहिये, किन्तु ईश्वर को होना चाहिए। जैसे सेनाध्यक्ष वा राजा की आज्ञा से कोई किसी को मारे तो वह अपराधी नहीं होता, अथवा किसी के मारने में लकड़ी तलवारादि शस्त्र (न) अपराधी और न दंडनीय होते हैं, वैसे ही जीवों को भी दंड न होना चाहिये। किन्तु पाप पुण्य का फल सुख-दु:ख ईश्वर भोगे। इसलिए जीव अपने कर्म करने में सर्वदा स्वतन्त्र और पाप का फल दु:ख भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतंत्र रह जाते हैं। जैसे चोर चोरी करने में स्वतन्त्र और राजदण्ड भोगने मे परतन्त्र हो जाते हैं, इसी प्रकार जीवों को भी जानो।

(पृष्ठ ४ प्रश्नोत्तर २८) "मुक्त जीव कर्म्मवश होकर फिर कभी संसार में नहीं आते। ईश्वरेच्छानुकूल अपनी इच्छा से केवल धर्म रक्षा करने को आते हैं।"

(समीक्षा) पाठकगण! विचारिये यह अविद्या का प्रताप नहीं है तो और क्या है? जो कहते हैं कि जीव संसार में कभी नहीं आते और ईश्वरेच्छानुकूल अपनी इच्छा से केवल धर्मरक्षा करने को आते भी हैं। धन्य! भला इस पूर्वापर विरुद्धता को गुरु और चेले ने तनिक भी न समझा। विचारणीय है कि जिसका ज्ञान, सामर्थ्य, कर्म अन्त वाले हैं उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है? और जो मुक्ति में से जीव संसार में न आवे तो संसार का उच्छेदन अर्थात् नाश ही हो जाय। और मुक्ति के स्थान में भीड़ भड़क्का हरद्वार के मेले के समान हो जावे। और ईश्वर भी अंत वाले गुण कर्म का फल अनन्त देवे तो न्यायरहित हो जाय। और परिमित गुण, कर्म, स्वभाव वाले जीव अनन्त आनन्द को भोग भी नहीं सकते। फिर यह बात वेद तथा शास्त्र के विरुद्ध भी है। देखो 'अग्नेर्वयं प्रतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च" (ऋग्वेद वचन) अर्थ—हम उसी सुन्दर निष्पाप परमात्मा का नाम जानते हैं और स्व-प्रकाश स्वरूप जगदीश्वर प्राप्तमोक्ष जीवों को पुन: अवधि पर संसार में माता-पिता के दर्शन कराता है अर्थात् मुक्ति सुख को भुगा-

कर पुनः संसार में जन्म देता है। इसी प्रकार सांख्य शास्त्र में भी लिखा है "नात्यन्तोच्छेदः" इत्यादि वचनों से यही सिद्ध होता है कि अत्यन्त जन्म-मरण का छेदन (न) किसी का हुआ और न होगा, किन्तु समय पर पुनः जन्म लेता है। इत्यादि प्रमाणों और युक्तियों से मुक्त जीव भी पुनरावृत्ति में आते हैं।

(पृष्ठ ४, प्रश्नोत्तर ३०) "एक वृक्ष में एक ही जीव होता है अथवा अनेक"।

(समीक्षा) जो एक वृक्ष में एक जीव होता तो प्रत्येक जीव (वृक्ष) में पृथक्-पृथक् जीव कहाँ से आते और किसी वृक्ष की डाली काटकर लगाने से जम जाता है उस में जीव कहाँ से आया, इसलिये एक वृक्ष में अनेक जीव होते हैं।

(पृष्ठ ५, प्रश्नोत्तर ३५) "अनेक पूर्व जन्मों के कर्म जो ईश्वर के ज्ञान में स्थित हैं वे सञ्चित कहलाते हैं।"

(समीक्षा) क्या जीव का कर्म्म जीव के ज्ञान में सञ्चित नहीं होता? जो ऐसा न हो तो कर्म्मों के योग से पवित्रता और अपवित्रता जीव में न होवे। इसलिये जो-जो अध्ययनादि कर्म जीव करते हैं उनका सञ्चय जीव में ही होता है, ईश्वर में नहीं। किन्तु ईश्वर तो केवल कर्म्मों का ज्ञाता है और फल प्रदाता है।

(पृष्ठ १२, प्रश्नोत्तर ७७) "केवल देवता और शिष्ट पुरुषों के नाम पर जन्माष्टम्यादि व्रत है। सो ईश्वरातिरिक्त किसी देव की उपासना कर्तव्य नहीं।"

(समीक्षा) क्या शिष्ट पुरुषों से भिन्न भी कोई देवता है? विना पृथिव्यादि के तेतीस और वेद मन्त्र तथा माता-पिता आचार्य्य अतिथि आदि के जिनका वेदों ने पूजन अर्थात् सम्यक् सत्कार करना कहा है। क्या यह भी मनुष्यों को कर्त्तव्य नहीं।

(पृष्ठ १३, प्रश्नोत्तर ८२) "जो कुछ ईश्वर ने नियत किया है उसमें न्यूनाधिक करने वाला कोई नहीं जो बात जिस प्राणी के लिये जिस काल में जिस प्रकार से ईश्वर ने नियत की है उससे विरुद्ध कभी नहीं होती।"

(समीक्षा) क्या ब्रह्मचर्य्य और योगाभ्यासादि उत्तम कर्मों से आयु का अधिक होना और कुपथ्य से वा व्यभिचारादि से न्यून नहीं होता? जब ईश्वर का नियत किया हुआ ही होता है तो जीव के कर्मों की अपेक्षा कुछ भी नहीं रह सकती। और जो अपेक्षा है तो केवल ईश्वर ने नियत नहीं किया किन्तु दोनों निमित्तों से होती है। जो हमारा क्रियमाण स्वतन्त्र न हो तो हम उन्नति

को प्राप्त कभी नहीं हो सकते। इसलिये हम कर्म करने में स्वतन्त्र और ईश्वर जीवों के कर्मों को यथायोग्य जानकर कर्म्मानुसार शुभाऽशुभ फल देने में स्वतन्त्र है। ऐसा माने विना ईश्वर में वे ही दोष आ जावेंगे, जो २५ वें प्रश्नोत्तर की समीक्षा में लिख आये हैं।

(पृष्ठ १३, प्रश्नोत्तर ८४) "स्वर्ग संसारांतर्गत है वा लोकान्तर ? "उत्तर" स्वर्ग लोक विशेष है वहां क्षुधा, पिपासा, बुढ़ापा आदि दुःख नहीं है।"

(समीक्षा) क्या लोकान्तर का नाम संसार है नहीं। क्या विना मुक्ति के प्रलय अथवा स्थूल शरीर के क्षुधादि की निवृत्ति हो सकती है। ऐसे विशेष स्वर्ग लोग को गुरु-शिष्य देख आये होंगे। जो पूर्व मीमांसा को देखा होता तो ऐसी अन्यथा बातें क्यों लिखते। देखिये "स एव स्वर्गः स्यात् सर्वान् प्रत्यविशिष्ट-त्वात्" पूर्वमीमांसा का वचन। जो सर्वत्र अविशेष अर्थात् सुख विशेष की प्राप्ति का नाम स्वर्ग और दुःखविशेष की प्राप्ति का नाम नरक लिखा है। सब जीवों को सब संसार में प्राप्त होता है किसी विशेष लोकान्तर ही में नहीं। और जहां शरीर धारण श्वास प्रश्वास भोग बृद्धि क्षय आदि होते हैं वहाँ क्षुधा पिपासा और बुड्ढापन आदि क्यों नहीं ? यह सब अविद्या की बात है। ध्यान दीजिये वेद का कोष क्या कहता है (स्वः) साधारण नाम में है निघण्टु १।४। "स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् सः स्वर्गः" जिसमें सुख की प्राप्ति हो वह स्वर्ग कहाता है। परन्तु "गौणमुख्ययोर्मध्ये मुख्ये कार्य्ये सम्प्रत्ययः।" यह व्याकरण महाभाष्यकार का वचन है। इससे यह सिद्ध होता है कि निर्मल धर्म्माऽनुष्ठान-जन्य सत्य विद्यादि साधनों से सिद्ध आत्मीय और शारीरिक सुख विशेष है। उसी प्रधान सुख की प्राप्ति का नाम स्वर्ग है।

(पृष्ठ १४, प्रश्नोत्तर ९१) "सम्पूर्ण जीव वास्तव में ईश्वर के दास हैं इस कारण मनुष्यों के नाम में ईश्वर वाच्य शब्द में दास शब्द का प्रयोग करना अत्युत्तम है।"

(समीक्षा) यह शास्त्रीय व्यवहार से सर्वथा बाहर है। किन्तु केवल कपोलकल्पना मात्र ही है। क्योंकि—

शर्म्मवद् ब्राह्मणस्य स्यात् राज्ञो रक्षासमन्वितम्।
वैश्यस्य गुप्तसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्॥ मनु०

जैसे ब्राह्मण का नाम विष्णु शर्म्मा, क्षत्रिय का विष्णु वर्म्मा, वैश्य का विष्णु गुप्त और शूद्र का विष्णुदास इस प्रकार रखना चाहिये। जो कोई शूद्र बनना चाहे तो अपना नाम दास शब्दान्त धर ले और जो शास्त्रोक्त विधि छोड़ मनोमुख चले उस को क्या कहना !

(पृष्ठ १६, प्रश्नोत्तर ६७) "परलोक और धर्मार्थ के फल तथा ईश्वर को न मानने वाले को नास्तिक कहते हैं।'

(समीक्षा) इसमें केवल इतनी न्यूनता है कि "नास्तिको वेदनिन्दकः" जो लाला जगन्नाथदास और मुन्शी इन्द्रमणि जी ने मनुस्मृति पढ़ी वा अच्छे प्रकार से देखी भी होती तो वेद निन्दक का नाम नास्तिक में क्यों न लिखते, जिससे सब कुछ अर्थ आ जाता और लक्षण भी दृष्टि पड़ता।

(पृष्ठ १६, प्रश्नोत्तर ६८) "हिन्दू" शब्द संस्कृत भाषा का नहीं है, फारसी भाषा में वास्तविक अर्थ "हिन्दुस्तान" के रहने वाले का अर्थ है और (काला, लुटेरा, गुलाम) यह सांकेतिकार्थ हैं।"

(समीक्षा) वह क्या ! जब संस्कृत भाषा का नहीं है तो इसका वास्तविक अर्थ कभी नहीं हो सकता, वास्तविक अर्थ (में) इस देश वालों-का नाम (आर्य्य) और इस देश का नाम आर्य्यावर्त्त है"। इस सत्यार्थ को छोड़ असत्यार्थ की कल्पना करनी मुझको तो अविद्या और हठ की लीला दृष्टि पड़ती है। जब "अर्बी" की (लुगात) नामक पुस्तक में लिखा है कि लुटेरे आदि का नाम हिन्दू है तो उस भाषा में वास्तविक नाम क्यों नहीं ? केवल सांकेतिक अर्थ क्यों ? अर्थात् जो कोई आर्य्य होकर अपने हिन्दू नाम होने में आग्रह करे, उन्हीं का नाम काला, लुटेरा, गुलामादि का रखो, आर्य्य का नहीं।

(पृष्ठ १६, प्रश्नोत्तर १००) 'पहले कहने वाला "परमात्मा जयति" कहे और उत्तर देने वाला "जयति परमात्मा" कहे।'

(समीक्षा) यह कल्पना वेदादि शास्त्रों से विरुद्ध होने के कारण सर्वथा ही मिथ्या जान पड़ती है क्योंकि "नमस्ते रुद्र मन्यवे०। नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः" इत्यादि यजुर्वेद वचन "परमर्षिभ्यो नमः" "नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो इत्यादि उपनिषद् वचन, इनसे निश्चित यही सिद्ध होता है कि परस्पर सत्कारार्थ (नमस्ते) शब्द से व्यवहार करने में वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है और परस्पर अर्थ भी यथावत् घटता है जैसे (ते) तुभ्यं वा तव अर्थात् जिस को मान्य देता है उसका वाची है और (नमः) शब्द नम्रार्थवाचक होने से नमस्कार कर्त्ता का बोधक है मैं तुम कू नमता हूँ अर्थात् (ते) आप वा तेरा मान्य वा सत्कार करता इसमें नमस्कर्ता और नमस्करणीय दोनों का परस्पर प्रसंग प्रकाशित होता है और यही अभिप्राय दोनों का है कि दोनों प्रसन्न रहें और जो असंबद्ध प्रलाप अर्थात् तीसरे परमेश्वर का प्रसंग लाना है सो व्यर्थ ही है। जैसे "आम्रान्पृष्टः कोविदारानाचष्टे" किसी ने किसी से पूछा कि आम्र के वृक्ष कौन से हैं उसने उसे उत्तर दिया कि ये कचनार के वृक्ष हैं। क्या ऐसी ही यह बात नहीं

है ? किसी ने ईश्वर का प्रश्न पूछा ही नहीं और न कोई परस्पर सत्कार के व्यवहार में ईश्वर प्रसंग है और कह देना कि (परमात्मा सारे उत्कर्षों के साथ विराजमान है) यह वचन हठयुक्त का नहीं तो और क्या है ? हाँ जहाँ परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना उपदेश और व्याख्या करने का प्रसंग हो वहाँ परमात्मा के नाम का उच्चारण करना सबको उचित है । जैसा राम-राम, जय गोपाल, जय कृष्णादि शब्दों से परस्पर व्यवहार करना, यह हठ दुराग्रह से सम्प्रदायी लोगों ने वेदादि शास्त्रविरुद्ध मनमानी व्यर्थ कल्पना की है, उसी प्रकार से मुन्शी इन्द्रमणि जी व लाला जगन्नाथदास जी की युक्ति और प्रमाण से शून्य यह कल्पना दृष्टि पड़ती है ।

इन विषयों में मुन्शी इन्द्रमणि जी और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का संवाद पूर्व समय में भी हो चुका है । परन्तु मुन्शी जी कब मानते हैं । विशेष क्या लिखें । शोक है कि लाला जगन्नाथदास की करतूतों को विचार कर अब मुझको यह कहना पड़ा कि इन दोनों महात्माओं के प्रतिज्ञा से विरुद्ध करना आदि अन्यथा व्यवहारों को जो कोई सज्जन पुरुष जानना चाहें, वे आर्य्यसमाज मेरठ लाला रामसरनदासादि व भद्र पुरुषों से पूछ देखें कि अन्य मार्गियों के विवाद विषय की शान्तिकारक व्यवहार प्रसंग में इन्होंने कैसा-कैसा विपरीत व्यवहार किया, जिसको सब जानकार आर्यलोग जानते हैं । सत्य यह बात चली आती है कि "सब पापों का पाप लोभ है" जो कोई उसी तृष्णारूपी नदीप्रवाह में बहे जाते हैं उनमें पवित्र वेदोक्त आर्य्य धर्म की स्थिरता होनी कठिन है । अब जो मुन्शी इन्द्रमणि जी और उनके चेले लाला जगन्नाथदास, स्वामी जी और भद्र आर्य्यों की व्यर्थ निन्दा करें तो इसमें क्या आश्चर्य है ? पाठक गण ! ठीक भी तो है जब जैसे में वैसा मिले फिर क्या न्यूनता रहै । जैसे दावानल अग्नि का सहायक वायु होता है वैसे ही इनके श्री मुन्शी बख्तारसिंह जी सहायकारी बन बैठे । अब तो जितनी निन्दा आर्य्य लोगों की करें उनती ही थोड़ी । चलो भाई यह भी अच्छी मण्डली जुड़ी । महाशयो ! जब तक तुम्हारा पेट न भरे तब तक निन्दा करने में कसर न रखना क्योंकि यह अवसर अच्छा मिला है । जैसे किसी कवि ने यह श्लोक कहा है सो बहुत ठीक है ।

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥

चाहे कोई अपने मतलब की नीति में चतुर निन्दा करे वा स्तुति करे, चाहै लक्ष्मी प्राप्त हो वा चली जावे, चाहे मरण आज ही हो वा वर्षान्तरों में,

परन्तु जो धीर पुरुष महाशय महात्मा आप्तजन हैं वे धर्म्म मार्ग से एक पाद भी विरुद्ध अर्थात् अधर्म मार्ग में नहीं चलते ॥ १ ॥

सभ्य गणो ! यह तो आर्य्यों की शुभेच्छा का कारण है, परन्तु जो प्रथम उत्तमाचरण करके पश्चात् गड़बड़ा जायं वे ही तो आर्य्यावर्त्त के हानिकारक होते हैं। परन्तु यह सदा ध्यान में रखना चाहिए क "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" जो इस सनातन वेदोक्त सत्य धर्म का आचरण करते हैं उसमें अनेक विघ्न क्यं न होय, तदपि इस सत्यमार्ग से चलायमान न होना चाहिए। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर परमात्मा अपनी कृपादृष्टि से इन विघ्नों से हम से और हम को इनसे सर्वथा दूर रखकर हम से आर्य्यावर्त्त की उन्नति कराने में सहायक रहै। इस थोड़े लेख से सज्जन पुरुष बहुत सा जान लेंगे। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु।

ध्यान किसका और कैसे करें

(महाराणा उदयपुर से प्रश्नोत्तर—अगस्त, १८८२)

स्वामी जी ११ अगस्त, सन् १८८२ से १ मार्च सन् १८८३ तक उदयपुर में रहे। इसी अवधि में एक दिन प्रात: काल के समय जब स्वामी जी ध्यान से निवृत्त हुए तो दर्बार (महाराणा उदयपुर) ने उनसे प्रश्न किया कि जब किसी मूर्तिमान् वस्तु को चाहे वह कैसी ही हो आप नहीं मानते तो ध्यान किसका करें ?

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि कोई चीज मानकर ध्यान नहीं करना चाहिये। ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वसृष्टिकर्ता, सृष्टि को एक क्रम में चलाने वाला, नियन्ता, पालनकर्ता और ऐसे ही अनेक ब्रह्माण्डों का स्वामी और नियन्ता ऐसी-ऐसी उसकी महिमा का स्मरण करके अपने चित्त में उसकी महानता का ध्यान करना चाहिए अर्थात्-इसी प्रकार समस्त विशेषणों से युक्त परमेश्वर को स्मरण करके उसका ध्यान करना और उसकी अपार महिमा का वर्णन करना संसार के उपकार में चित्त की वृत्ति लगाने की प्रार्थना करना, यह ध्यान है।

(लेखराम पृष्ठ ५५६)

ब्रह्मचर्य का महत्त्व

(कविराज शामलदास जी उदयपुर से वार्तालाप—अगस्त, १८८२)

शामलदास ने कहा—

एक दिन मैंने निवेदन किया कि आपका स्मारक चिह्न बनना चाहिए।

कहा कि नहीं; प्रत्युत मेरी भस्मी को किसी खेत में डाल देना, काम आयेगी। कोई स्मारक न बनाना, ऐसा न हो कि मेरी मूर्तिपूजा आरम्भ हो जाये। मेरा (शामलदास) का विचार था कि अपना प्रस्तर मूर्त्ति बनवाऊँ। कहा कि—कविराज जी ऐसा न करना मूर्त्तिपूजा का मूल यही है? उनकी समस्त बातें श्रेष्ठ थीं। ब्रह्मचारी तो प्रथम श्रेणी के थे। जहां तक उनसे हो सकता था स्त्रियों को देखते ही नहीं थे। उनका कथन था कि 'वीर्य का नाश आयु का नाश है। वह वीर्य बड़ा रत्न है'। यदि मार्ग में जाते हुए कहीं कोई स्त्री आ जाती तो उस ओर पीठ कर लिया करते थे। उनकी यह बातें ढोंग नहीं प्रत्युत सच्ची और हार्दिक थीं, क्योंकि वे एक महान् जितेन्द्रिय थे। (लेखराम पृ० ५५७)

ईश्वरीय ज्ञान अनादि है

मौलवी अब्दुल रहमान साहब न्यायाधीश से उदयपुर में शास्त्रार्थ

११ तथा १३ व १७ सितम्बर, १८८२ ई०

पंडित बृजनाथ जी शासक साइर मेवाड़ देश (जो उस समय इस शास्त्रार्थ के लिखने वाले थे) ने कथन किया कि मैं उस समय स्वामी जी के मध्य दु-भाषिया भी था। अर्बी के कठोर शब्दों का अर्थ स्वामी जी को और संस्कृत के कठिन शब्दों का अर्थ मौलवी को बता दिया करता था। यह शास्त्रार्थ मैंने उस समय अपने हाथ से लिखा जिसका मूल लेख पैंसिल का लिखा हुआ अभी तक विद्यमान है।

तीन मनुष्य इस शास्त्रार्थ के लिखने वाले थे। एक पंडित बृजनाथ जी शासक साइर, दूसरे मिर्जा मोहम्मद अली खां भूतपूर्व वकील वर्तमान सदस्य विधान सभा टौंक, तीसरे मुन्शी रामनारायण जी सरिश्तेदार, बागकलाँ सर्कारी जिनमें से १ व ३ सज्जनों के मूल लेख हमको मिल गये हैं। और जिनका मौलवी साहब ने भी समर्थन किया है परन्तु उनकी बुद्धिमानी तथा ईमानदारी पर खेद है कि उस समय तो कोई युक्तियुक्त उत्तर न दे सके और पीछे से दिसम्बर, सन् १८८९ में निर्मूल और झूठे-झूठे उद्धरण देकर मूललेख के विरुद्ध कुछ का कुछ प्रकाशित करके अपनी धार्मिकता का चमत्कार दिखाया। इस शास्त्रार्थ के दिन सामान्य तथा विशेष हिन्दू तथा मुसलमान सुनने वालों की बहुत अधिकता थी यहाँ तक कि श्री दर्बार वैकुण्ठवासी महाराजा सज्जनसिंह भी शास्त्रार्थ सुनने के लिए पधारे हुए थे।

"स्वामी दयानन्द जी महाराज और मौलवी अब्दुर्रहमान साहब सुपरिण्टे-

ण्डेण्ट पुलिस तथा न्यायाधीश न्यायालय उदयपुर मेवाड़ देश के मध्य में होने वाला शास्त्रार्थ"

११ सितम्बर, सन् १८८२ तदनुसार भादों बदि चौदश,
संवत् १९३९, सोमवार।

मौलवी साहब—(प्रथम प्रश्न) ऐसा कौन सा मत है जिसकी मूल पुस्तक सब मनुष्यों की बोलचाल और समस्त प्राकृतिक बातों को सिद्ध करने में पूर्ण हो। जब बड़े-बड़े मतों पर विचार किया जाता है जैसे भारतीय वेद पुराण या चीन वाले चीनी, जापानी, बर्मी बौद्ध वाले, फार्सी जिन्द वाले, यहूदी तौरेत वाले, नसरानी इन्जील वाले, मौहम्मदी कुरान वाले तो प्रकट होता है कि उनके धार्मिक नियम और मूल विशेष एक देश में एक भाषा के द्वारा एक प्रकार से ऐसे बनाये गये हैं जो एक दूसरे से नहीं मिलते और इन मतों में से प्रत्येक मत के समस्त गुण और विशेष चमत्कार उसी देश तक सीमित हैं जहाँ वह बना है। जिनमें से कोई एक लक्षण तथा चिह्न उसी देश के अतिरिक्त दूसरे देश में नहीं पाया जाता, प्रत्युत दूसरे देश वाले अनभिज्ञता के कारण उसे बुरा जानकर उसके प्रति मानवी व्यवहार तो क्या उसका मुख तक देखना नहीं चाहते। ऐसी दशा में सब मतों में से कौन-सा मत सत्य समझना चाहिये।

उत्तर स्वामी जी का—मतों की पुस्तकों में से विश्वास के योग्य एक भी नहीं क्योंकि पक्षपात से पूर्ण हैं। जो विद्या की पुस्तक पक्षपात से जो रहित है वह मेरे विचार में सत्य है और ऐसी पुस्तक का साधारण प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध न होना भी आवश्यक है। मैंने जो खोज की है उसके अनुसार वेदों के अतिरिक्त कोई पुस्तक ऐसा नहीं है जो विश्वास के योग्य हो क्योंकि समस्त पुस्तकें किसी न किसी देश विशेष की भाषा में हैं और वेद की भाषा किसी देश विशेष की भाषा नहीं, केवल विद्या की भाषा है। क्योंकि यह विद्या की पुस्तक है, इसी कारण से किसी मत विशेष से सम्बन्ध नहीं रखती। यही पुस्तक समस्त देशीय भाषाओं का मूल कारण है और पूर्ण होने से प्रसिद्ध भलाइयों तथा निषिद्ध बुराइयों की परिचायक है और समस्त प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है।

प्रश्न मौ०—क्या वेद मत की पुस्तक नहीं है ?

उत्तर स्वा०—वेद मत की पुस्तक नहीं है प्रत्युत विद्या की पुस्तक है।

प्रश्न मौ०—मत का आप क्या अर्थ करते हैं ?

उत्तर स्वा०—पक्षपात सहित को मत कहते हैं इसी कारण से मत की पुस्तक सर्वथा मान्य नहीं हो सकतीं।

प्रश्न मौ०—हमारे पूछने का अभिप्राय यह है कि समस्त मनुष्यों की भाषाओं पर तथा समस्त मनुष्यों के आचारों पर और समस्त प्राकृतिक नियमों पर कौन-सी पुस्तक पूर्ण है सो आपने वेद निश्चित किया। सो वेद इस योग्य है वा नहीं ?

उत्तर स्वामी—हां है।

प्रश्न मौ०—आपने कहा कि वेद किसी देश की भाषा में नहीं। जो किसी देश की भाषा नहीं होती उसके अन्तर्गत समस्त भाषाएं कैसे हो सकती हैं ?

उत्तर स्वा०—जो किसी देश विशेष की भाषा होती है वह किसी दूसरी देश भाषा पें व्यापक नहीं हो सकती क्योंकि उसी में बद्ध (सीमित) है।

प्रश्न मौ०—जब एक देश की भाषा होने से वह दूसरे देश में नहीं मिलती तो जब वह किसी देश की है ही नहीं तो सब में व्यापक कैसे हो सकती है ?

उत्तर स्वा०—जो एक देश की भाषा है उसका व्यापक कहना सर्वथा विरुद्ध है और जो किसी देश विशेष की भाषा नहीं वह सब भाषाओं में व्यापक है जैसे आकाश किसी देश विशेष का नहीं है इसी से सब देशों में व्यापक है। ऐसे वेद की भाषा भी किसी देश विशेष से सम्बन्ध न रखने से व्यापक है।

प्रश्न मौ०—यह भाषा किसकी है ?

उत्तर स्वा०—विद्या की।

प्रश्न मौ०—बोलने वाला इसका कौन है ?

उत्तर स्वा०—इसका बोलने वाला सर्वदेशी है।

मौलवी—तो वह कौन है ?

स्वामी—वह परब्रह्म है।

मौलवी—यह किसको सम्बोधन की गई है ?

स्वामी—आदि सृष्टि में इसके सुनने वाले चार ऋषि थे जिनका नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा था। इन चारों ने ईश्वर से शिक्षा प्राप्त करके दूसरों को सुनाया।

मौलवी—इन चारों को ही विशेषरूप से क्यों सुनाया ?

स्वामी—वे चार ही सब में पुण्यात्मा और उत्तम थे।

मौलवी—क्या इस बोली को वे जानते थे ?

स्वामी—उस जानने वाले ने उसी समय उनको भाषा भी जना दी थी अर्थात् उस शिक्षक ने उसी समय उनको भाषा का ज्ञान दे दिया।

मौलवी—इसको आप किन युक्तियों से सिद्ध करते हैं?

स्वामी—बिना कारण के कार्य कोई नहीं हो सकता।

मौलवी—बिना कारण के कार्य होता है या नहीं?

स्वामी—नहीं।

मौलवी—इस बात की क्या साक्षी है?

स्वामी—ब्रह्मादिक अनेक ऋषियों की साक्षी है और उनके ग्रन्थ भी विद्यमान हैं।

मौलवी—यह साक्षी सन्देहात्मक और बुद्धिविरुद्ध है। कारण कथन कीजिये।

स्वामी—वेद की साक्षी स्वयं वेद से प्रकट है।

मौलवी—इसी प्रकार सब मतवाले भी अपनी-अपनी पुस्तकों में कहते हैं।

स्वामी—ऐसी बात दूसरे मतवालों की पुस्तकों में नहीं है और न वे सिद्ध कर सकते हैं।

मौलवी—पुस्तक वाले सभी सिद्ध कर सकते हैं।

स्वामी—मैं पहले ही कह चुका हूं कि मतवाले ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते (और यदि कर सकते हैं तो बताइये कि मौहम्मद साहब के पास कुरान कैसे पहुंचा)।

मौलवी—जैसे चारों ऋषियों के पास वेद आया।

नोट—खेद है कि मौलवी साहब ने बिना सोचे समझे ऐसा कह दिया। यह किसी प्रकार ठीक नहीं। न तो कुरान आदि सृष्टि में मौहम्मद साहब की आत्मा में प्रकाशित हुआ और न उसमें वर्णित कहानियाँ ही ऐसी हैं जो आदि सृष्टि से सम्बन्धित हों और न उसकी भाषा ही ऐसी है। मौहम्म साहब और खुदा के मध्य में तीसरा जबराइल और असंख्य फरिश्तों की चौकीदारी और पहरा और आकाश से उतरना आदि समस्त बातें ऐसी हैं जिनसे कोई मौहम्मदी भाई इंकार नहीं कर सकता। इसलिये कुरान किसी प्रकार भी इस विशेषण का पात्र नहीं हो सकता और उस्मान और कुरानों के बदलने की कहानी इसके अतिरिक्त है। —**सम्पादक**

दूसरा प्रश्न—

प्रश्न मौलवी—समस्त संसार के मनुष्य एक जाति के हैं अथवा कई जातियों के ?

उत्तर स्वामी—जुदी-जुदी जातियों के हैं।

मौलवी—किस युक्ति से ?

स्वामी—सृष्टि की आदि में ईश्वरीय सृष्टि में उतने जीव मनुष्य शरीर-धारण करते हैं कि जितने गर्भ सृष्टि में शरीर धारण करने के योग्य होते हैं और वे जीव असंख्य होने से अनेक हैं।

मौलवी—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ?

स्वामी—अब भी सब ही अनेक माँ-बाप के पुत्र हैं।

मौलवी—इसके विश्वसनीय प्रमाण कहिये।

स्वामी—प्रत्यक्षादि आठों प्रमाण।

मौलवी—वे कौन से हैं ?

स्वामी—प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, ऐतिह्य, संभव, उपमान, अभाव, अर्थापत्ति।

मौलवी—इन आठों में से एक-एक का उदाहरण दे कर सिद्ध कीजिये।

प्रश्न मौलवी—ये जो आकार मनुष्यों के हैं, इनके शरीर एक प्रकार के बने अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार के बने ?

उत्तर स्वामी—मुख आदियों में एक से हैं, रंगों में कुछ भेद है।

मौलवी—किस-किस रंग में क्या-क्या भेद है ?

स्वामी—छोटाई-बड़ाई में किञ्चिन्मात्र अन्तर है।

मौलवी—यह अन्तर एक देश अथवा एक जाति में एक ही प्रकार के हैं अथवा भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के ?

स्वामी—एक-एक देश में अनेक हैं। जैसे एक माँ-बाप के पुत्रों में भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं।

मौलवी—हम जब संसार की अवस्था पर दृष्टिपात करते हैं तो आपके कथनानुसार नहीं पाते। एक ही देश में कई जातियाँ जैसे हिन्दी, हब्शी, चीनी, इत्यादि देखने में पृथक्-पृथक् विदित होती हैं अर्थात् चीन वाले दाढ़ी नहीं रखते और तिकौने मुँह के होते हैं। हब्शी, मलन्गई, चीनी, तीनों की आकृतियाँ परस्पर नहीं मिलतीं। एक ही देश में यह भेद क्योंकर है ?

स्वामी—उनमें भी अन्तर है।

मौलवी—दाढ़ी न निकलने का क्या कारण है ?

स्वामी—देशकाल और माँ-बाप आदि के शरीरों में कुछ-कुछ भेद है। समस्त शरीर रज वीर्य्य के अनुसार बनते हैं। वात, पित्त, कफ आदि धातुओं के संयोग वियोग से भी कुछ भेद होते हैं।

मौलवी—हम समस्त संसार में तीन प्रकार के मनुष्य देखते हैं जिनका विभाजन इस प्रकार है—दाढ़ी वाले, बिना दाढ़ी के, घूँघरू बाल वाले। दाढ़ी वाले भारतीय, फिरंगी, अर्बी, मिश्री आदि। बे दाढ़ी वाले चीनी, जापानी, कैमिस्टका के। घुंघरू बाल वाले हब्शी। इन तीनों की बनावट और प्रकार में बहुत-सा भेद है। एक दूसरे से नहीं मिलता और यह भेद आपके कथनानुसार ऊपर वाले कारणों से है। यदि एक देश के रहने वाले ये तीनों प्रकार के मनुष्य दूसरे देश में जाकर रहें तो कभी भेद नहीं होता। जाति समान है। इस अवस्था में संसार के मूलपुरुष आपके कथनानुसार तीन हुऐ, अधिक नहीं।

स्वामी—भोटियों को किस में मिलाते हैं। वे किसी से नहीं मिलते। इस प्रकार तीन से अधिक सम्पत्ति विदित होती हैं।

मौलवी—जैसा भेद इन तीनों में है वैसा दूसरे में नहीं। तीनों जातियों का परस्पर मिल जाना इस थोड़े भेद का कारण है परन्तु इन तीनों की आकृति एक दूसरे से नहीं मिलती।

तीसरा प्रश्न—

प्रश्न मौलवी—मनुष्य की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा ?

स्वामी—एक अरब छयानवे करोड़ और कितने लाख वर्ष उत्पत्ति को हुए और दो अरब वर्ष से कुछ ऊपर तक और रहेगी।

मौलवी—इसका क्या कारण और प्रमाण है ?

स्वामी—इसका हिसाब विद्या और ज्योतिष शास्त्र से है।

मौलवी—वह हिसाब बतलाइये ?

स्वामी—भूमिका के पहले अंक में लिखा है और हमारे ज्योतिषशास्त्र स सिद्ध है, देख लो।

चौथा प्रश्न—

(१३ सितम्बर, सन् १८८२, बुधवार तदनुसार भादों सुदि एकम,
संवत् १९३९ विक्रमी)

प्रश्न (मौलवी जी की ओर से)—आप धर्म के नेता हैं या विद्या के अर्थात् आप किसी धर्म के मानने वाले हैं या नहीं ?

उत्तर (स्वामी जी की ओर से)—जो धर्म विद्या से सिद्ध होता है उसको मानते हैं।

प्रश्न मौलवी—आपने किस प्रकार जाना कि ब्रह्म ने चारों ऋषियों को वेद पढ़ाया ?

उत्तर स्वामी—प्रदान किये गये वेदों के पढ़ने से और विश्वसनीय विद्वानों की साक्षी से।

मौलवी—यह साक्षी आप तक किस प्रकार पहुँची ?

स्वामी—शब्दानुक्रम से और उनके ग्रन्थों से।

मौलवी—प्रश्नों से पूर्व परसों यह निश्चित हुआ था कि उत्तर बुद्धि के आधार पर दिए जायेंगे, पुस्तकों के आधार पर नहीं। अब आप उसके विरुद्ध ग्रन्थों की साक्षी देते हैं।

स्वामी—बुद्धि के अनुकूल वह है जो विद्या से सिद्ध हो चाहे वह लिखित हो अथवा वाणी द्वारा कहा जावे। समस्त बुद्धिमान् इसको मानते हैं और आप भी।

मौलवी—इस कथन के अनुसार ब्रह्म का चारों ऋषियों को वेद की शिक्षा देना विद्या अथवा बुद्धि द्वारा किस प्रकार सिद्ध होता है ?

स्वामी—विना कारण के कार्य नहीं हो सकता इसलिये विद्या का भी कोई कारण चाहिये और विद्या का कारण वह है कि जो सनातन हो। यह सनातन विद्या परमेश्वर में उसकी कारीगरी को देखने से सिद्ध होती है। जिस प्रकार वह समस्त सृष्टि का निमित्त कारण है उसी प्रकार उसकी विद्या भी समस्त मनुष्यों की विद्या का कारण है। यदि वह उन ऋषियों को शिक्षा न देता तो सृष्टि-नियम के अनुकूल यह जो विद्या की पुस्तक है, इसका क्रम ही न चलता।

मौलवी—ब्रह्म ने वेद चारों ऋषियों को पृथक्-पृथक् पढ़ाया अथवा एक साथ क्रमशः शिक्षा दी अथवा एक काल में पढ़ाया ?

स्वामी—ब्रह्म व्यापक होने के कारण चारों को पृथक्-पृथक् और क्रमश: पढ़ाता गया क्योंकि वे चारों परिमित बुद्धि वाले होने के कारण एक ही समय कई विद्याओं को नहीं सीख सकते थे और प्रत्येक की बुद्धिप्राप्ति की शक्ति भिन्न-भिन्न होने के कारण कभी चारों एक समय में और कभी पृथक्-पृथक् समझकर एक साथ पढ़ते रहे। जिस प्रकार चारों वेद पृथक्-पृथक् हैं उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को एक-एक वेद पढ़ाया।

मौलवी—शिक्षा देने में कितना समय लगा?

स्वामी—जितना समय उनकी बुद्धि की दृढ़ता लिए आवश्यक था।

नोट—(इससे आगे मौलवी साहब के स्थान पर मौ० और स्वामी के स्थान पर स्वा० लिखा जायगा)।

मौ०—पढ़ाना मानसिक प्रेरणा के द्वारा था अथवा शब्द अक्षर आदि के द्वारा जो वेद में लिखे हुए हैं अर्थात् क्या शब्द अर्थ सम्बन्ध सहित पढ़ाया?

स्वा०—वही अक्षर जो वेद में लिखे हुए हैं शब्दार्थ सम्बन्ध रहित पढ़ाए गये।

मौ०—शब्द बोलने के लिए मुख, जिह्वादि साधनों की अपेक्षा है। शिक्षा देने वाले में यह साधन हैं या नहीं?

स्वा०—उसमें ये साधन नहीं हैं क्योंकि वह निराकार है। शिक्षा देने के लिए परमेश्वर अवयवों तथा बोलने के साधनादि से रहित है।

मौ०—शब्द कैसे बोला गया?

स्वा०—जैसे आत्मा और मन से बोला सुना और समझा जाता है।

मौ०—भाषा को जाने बिना शब्द किस प्रकार उनके मन में आये?

स्वा०—ईश्वर के डालने से क्योंकि वह सर्वव्यापक है।

मौ०-इस सारे वार्तालाप में दो बातें बुद्धि के विरुद्ध हैं प्रथम यह कि ब्रह्म ने केवल चार ही मनुष्यों को उस भाषा में वेद की शिक्षा दी जो किसी देश अथवा जाति की भाषा नहीं। दूसरे यह कि उच्चारित शब्द जो पहले से जाने हुए न थे, दिल में डाले गए और उन्होंने ठीक समझे। यदि यह स्वीकार किया जावे तो फिर समस्त बुद्धिविरुद्ध बातें जैसे चमत्कारादि सब मतों के सत्य स्वीकार करने चाहियें।

स्वा०—ये दोनों बातें बुद्धिविरुद्ध नहीं क्योंकि ये दोनों ही सच्ची हैं। जो कुछ जिह्वा से अथवा आत्मा से बताया जावे वह शब्दों के बिना नहीं हो सकता। उसने जब शब्द बतलाये तो उनमें ग्रहण करने की शक्ति थी। उसके द्वारा उन्होंने परमेश्वर के ग्रहण कराने से योग्यतानुसार ग्रहण किया। और बोलने के साधनों की आवश्यकता बोलने और सुनने वाले के अलग अलग होने पर होती है

क्योंकि जो वक्ता मुख से न कहे और श्रोता के कान न हों तो न कोई शिक्षा कर सकता है और न कोई श्रवण। परमेश्वर चूंकि सर्वव्यापक है इसलिए उनके आत्मा में भी विद्यमान था, पृथक् न था। परमेश्वर ने अपनी सनातन विद्या के शब्दों को उनके अर्थात् चारों के आत्माओं में प्रकट किया और सिखाया। जैसे किसी अन्य देश की भाषा का ज्ञाता किसी अन्य देश के अनभिज्ञ मनुष्य को जिसने उस भाषा का कोई शब्द नहीं सुना, सिखा देता है उसी प्रकार परमेश्वर ने जिसकी विद्या व्यापक है और जो उस विद्या की भाषा को भी जानता था, उनको सिखा दिया। ये बातें बुद्धिविरुद्ध नहीं। जो इनको बुद्धिविरुद्ध कहे वह अपने दावे को युक्तियों द्वारा सिद्ध करे। पुराण जो पुरानी पुस्तकें हैं अर्थात् वेद के चार ब्राह्मण हैं, वे वहीं तक सत्य हैं जहाँ तक वेदविरुद्ध न हों। और जो अठारह पुराण नवीन हैं जैसे भागवत, पद्मपुराणादि, वे प्राकृतिक नियमों और विद्या के विरुद्ध होने से सत्य नहीं, नितान्त झूठे हैं।

मौ०—पुराण मत की पुस्तकें हैं या विद्या की ?

स्वा०—वह प्राचीन पुस्तकें अर्थात् चारों ब्राह्मण विद्या की और पिछली भागवतादि पुराण मत की पुस्तकें हैं जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ।

मौ०—जब वेद विद्या की पुस्तक हैं और पुराण मत की पुस्तकें हैं और आपके कथनानुसार असत्य हैं तो आर्यों का धर्म क्या है ?

स्वा०—धर्म वह है जिसमें निष्पक्षता, न्याय और सत्य का स्वीकार और असत्य का अस्वीकार हो। वेदों में भी उसी का वर्णन है और वही आर्य्यों का प्राचीन धर्म है और पुराण केवल पक्षपातपूर्ण सम्प्रदायों अर्थात् शैव, वैष्णवादि से सम्बन्धित हैं जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ।

मौ०—पक्षपात आप किसको कहते हैं ?

स्वा०—जो अविद्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुसंग से किसी अपने स्वार्थ के लिये न्याय और सत्य को छोड़कर असत्य और अन्याय को धारण करना है, वह पक्षपात कहलाता है।

मौ०—यदि कोई इन गुणों से रहित हो, आर्य्य न हो तो आर्य्य लोग उसके साथ भोजन और विवाहादि व्यवहार करेंगे या नहीं।

स्वा०—विद्वान् पुरुष भोजन तथा विवाह को धर्म अथवा अधर्म से सम्बन्धित नहीं मानते प्रत्युत इसका सम्बन्ध विशेष रीतियों, देश तथा समीपस्थ वर्गों से है। इसके ग्रहण अथवा त्याग से धर्म की उन्नति अथवा हानि नहीं होती परन्तु किसी देश अथवा वर्ग में रहकर किसी अन्य मतवाले के साथ इन दोनों कार्य्यों

में सम्मिलित होना हानिकारक है इसलिए करना अनुचित है। जो लोग भोजन तथा विवाहादि पर ही धर्म अथवा अधर्म का आधार समझते हैं उनका सुधार करना विद्वानों को आवश्यक है और यदि कोई विद्वान् उनसे पृथक् हो जावे तो वर्ग को उससे घृणा होगी और यह घृणा उसको शिक्षा का लाभ उठाने से वंचित रखेगी। सब विद्याओं का निष्कर्ष यह है कि दूसरों को लाभ पहुंचाना और दूसरों को हानि पहुंचाना उचित नहीं।

पाँचवां प्रश्न—

(रविवार १७ सितम्बर, सन् १८८२ तदनुसार भादों सुदि पंचमी
संवत् १९३९ विक्रमी)

प्रथम मौ०—समस्त धर्म वाले अपनी धार्मिक पुस्तकों को सबसे उत्तम और उनकी भाषा को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं और उसको उस कारण का कार्य भी कहते हैं। जिस प्रकार की बौद्धिक युक्तियाँ वे देते हैं उसी प्रकार आपने भी वेद के विषय में कहा। कोई प्रमाण प्रकट नहीं किया, फिर वेदमें क्या विशेषता है ?

स्वा०—पहले भी इसका उत्तर दे दिया गया है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों और प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध विषय जिन पुस्तकों में होंगे वे सर्वज्ञ की बनाई हुई नहीं हो सकतीं और कार्य का होना कारण के बिना असम्भव है। चार मत जो कि समस्त मतों का मूल हैं अर्थात् पुराणी, जैनी, इंजील तौरेत वाले किरानी, कुरानी इनकी पुस्तकें मैंने कुछ देखी हैं और इस समय भी मेरे पास हैं और मैं इनके बारे में कुछ कह भी सकता हूँ और पुस्तक भी दिखा सकता हूँ। उदाहरणार्थ—पुराण वाले एक शरीर से सृष्टि का आरम्भ मानते हैं यह अशुद्ध है क्योंकि शरीर संयोगज है, इसलिए वह कार्य है उसके लिए कर्त्ता की अपेक्षा है।

जिन्होंने इस कार्य को इस प्रकार सनातन माना है कि कोई इसका रचयिता नहीं, वह भी अशुद्ध है क्योंकि संयोगज पदार्थ स्वयं नहीं बनता। इंजील और कुरान में अभाव से भाव माना है। ये चारों बातें उदाहरणार्थ विद्या के नियमों के विरुद्ध हैं, इसलिए इनकी वेद से समता नहीं कर सकते। वेदों में कारण से कार्य को माना है और कारण को अनादि कहा है। कार्य को प्रवाह से अनादि और संयोगज होने के कारण सान्त बताया है। इसको समस्त बुद्धिमान् मानते हैं। मैं सत्य और असत्य वचनों के कारण वेद की सत्यता और मतस्थ पुस्तकों की असत्यता कथन करता हूँ। यदि कोई सज्जन इसको प्रकट रूप में देखना चाहें तो मैं किसी दिन तीन घंटे के भीतर उन मतों की पुस्तकों को प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध सिद्ध करके दिखा सकता हूँ। यदि कोई नास्तिक वेद में

से प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कोई बात दिखायेगा तो उसको विचार करने के पश्चात् केवल अपनी अज्ञानता ही स्वीकार करनी पड़ेगी। इसलिए वेद सत्य-विद्याओं की पुस्तक है न किसी मत विशेष की।

छठा प्रश्न—

प्रश्न मौ०—क्या प्रकृति अनादि है ?

उत्तर स्वा०—उपादान कारण अनादि है।

मौ०—अनादि आप कितने पदार्थों को मानते हैं ?

स्वा०—तीन। परमात्मा, जीव और सृष्टि का कारण—यह तीनों स्वभाव से अनादि हैं। इन का संयोग, वियोग, कर्म तथा उनका फल भोग प्रवाह से अनादि है। कारण का उदाहरण—जैसे घड़ा कार्य, उसका उपादान कारण मट्टी बनाने वाला अर्थात् निमित्त कारण कुम्हार चक्र दंडादि साधारण कारण, काल तथा आकाश समवाय कारण।

मौ०—वह वस्तु जिसको हमारी बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती, हम उसको अनादि क्योंकर मान सकते हैं ?

स्वा०—जो वस्तु नहीं है वह कभी नहीं हो सकती और जो है वही होती है। जैसे इस सभा के मनुष्य जो थे तो यहाँ आये। यहाँ हैं तो फिर भी कहीं होंगे। बिना कारण के कार्य का मानना ऐसा है जैसे वन्ध्या के पुत्र उत्पन्न होने की बात कहना। कार्य वस्तु से चारों कारण जिनका ऊपर वर्णन किया है, पहले मानने पड़ेंगे। संसार में कोई ऐसा कार्य नहीं जिसके पूर्वकथित चार कारण न हों।

मौ०—सम्भव है कि जगत् का कारण जिसे आप अनादि कहते हैं, कदाचित् वह भी किसी अन्य वस्तु का कार्य हो। जैसे कि बिजली के बनने में कई साधारण वस्तुएं मिलकर ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो अत्यन्त महान् है। इस वार्तालाप के परिमाण से प्रकट है कि प्रत्येक वस्तु के लिए कोई कारण चाहिए तो कारण के लिए भी कोई कारण अवश्य होगा।

स्वा०—अनादि कारण उसका नाम है जो किसी की कार्य न हो। जो किसी का कार्य हो उसको अनादि अथवा सनातन कारण नहीं कह सकते किन्तु वह परम्परा और पूर्वापर सम्बन्ध से कार्य कारण नाम वाला होता है। यह बात सब विद्वानों को जो पदार्थविद्या को यथावत् जानते हैं, स्वीकरणीय है। किसी वस्तु को चाहे जहाँ तक अवस्थान्तर में विभक्त करते चले जावें, चाहे वह सूक्ष्म हो चाहे स्थूल, जो उसकी अन्तिम अवस्था होगी, उसको कारण कहते हैं

और जो यह बिजुली का दृष्टान्त दिया, वह भी निश्चित कारणों से होता है जो उसके लिये आवश्यक हैं। अन्य कारणों से वह नहीं हो सकती ।

सातवाँ प्रश्न—

मौ०—यदि वेद ईश्वर का बनाया होता तो अन्य प्राकृतिक पदार्थों सूर्य, जल तथा वायु के समान संसार के समस्त साधारण मनुष्यों को लाभ पहुंचाना चाहिए था।

स्वा०—सूर्यादि सृष्टि के समान ही वेदों से सबको लाभ पहुंचता है क्योंकि सब मतों और विद्या की पुस्तकों का आदिकारण वेद ही हैं। और इन पुस्तकों में विद्या के विरुद्ध जो बातें हैं वे अविद्या के सम्बन्ध से हैं क्योंकि वे सब पुस्तकें वेद के पीछे बनी हैं। वेद के अनादि होने का प्रमाण यह है कि अन्य प्रत्येक मत की पुस्तक में वेद की बात गौण अथवा प्रत्यक्ष रूप से पाई जाती है और वेदों में किसी का खंडन मंडन नहीं। जैसे सृष्टि विद्या वाले सूर्यादि से अधिक उपकार लेते हैं वैसे ही वेद के पढ़ने वाले भी वेद से अधिक उपकार लेते हैं और नहीं पढ़ने वाले कम।

मौ०—कोई इस दावे को स्वीकार नहीं करता कि किसी काल में वेद को समस्त मनुष्यों ने माना हो और न किसी मत की पुस्तक में प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से वेदों का खंडन मंडन पाया जाता है।

स्वा०—वेद का खंडन मंडन पुस्तकों में है, जैसे कुरान में बेकिताब वाले और एक ऊनी ईश्वर के मानने वाले जैसे बाइविल में पिता पुत्र और पवित्रात्मा, होम की भेंट, ईश्वर को प्रिय, याजक, महायाजक, यज्ञ, महायज्ञ आदि शब्द आते हैं। जितने मतों के पुस्तक बने हुए हैं—बीच के काल के हैं। उस समय के इतिहास से सिद्ध है कि मुसलमान, ईसाई आदि जंगली थे तो जंगलियों को विद्या से क्या काम। पूर्व के विद्वान् पुरुष वेदों को मानते थे और वर्तमान समय में शब्द विद्या (फिलालोजी) के परीक्षक मोक्षमूलर आदि विद्वान् भी संस्कृत भाषा तथा ऋग्वेदादि को सब भाषाओं का मूल निश्चित करते हैं। जब बाइबिल कुरान नहीं बने थे तब वेद के अतिरिक्त दूसरी मानने योग्य पुस्तक कोई भी नहीं थी। मनुष्य की उत्पत्ति का आदि काल ही ऋषियों की वेदप्राप्ति का समय है जिसको १९६०८५२९७७ वर्ष हुए। इससे प्राचीन कोई पुस्तक नहीं है ।

पांडे मोहनलाल जी ने कहा कि मौलवी साहब के शास्त्रार्थ के प्रथम दिन तो राणासाहब नहीं आये थे परन्तु उन्होंने शास्त्रार्थ लिखित होना स्वीकार किया था। अन्तिम दिन श्री महाराज पधारे और मौलवी साहब की हठ देखकर श्री दर्बार साहब ने कहा कि जो कुछ स्वामी जी ने कहा है वह निस्सन्देह ठीक

है। फिर शास्त्रार्थ नहीं हुआ। कविराज श्यामलदास जी ने भी इसका समर्थन किया।

नवीन वेदान्त

(राव राजा मोंहर्नासह जोधपुर से प्रश्नोत्तर—जून, १८८३)

जोधपुर निवासकाल में राव राजा शिवनाथसिंह जी के भाई राव राजा मोहनसिंह जी जो संस्कृतज्ञ थे, कई बार स्वामी जी से मिलने के लिए आये और जीव ब्रह्म की एकता के बारे में स्वामी जी से प्रश्न किया कि आप जीव हैं या ब्रह्म ?

स्वामी जी ने कहा कि हम जीव हैं।

उसने कहा कि मैं तो ब्रह्म हूँ क्योंकि पंडित का यही कथन है कि वह समदर्शी हो और चराचर में उसको देखे।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि ब्रह्म हो तो ब्रह्म के गुण होने चाहियें जो कि आप में नहीं दीखते। इस पर कई मन्त्र पढ़कर सुनाये जिस पर उसने कहा कि यदि मैं चाहूँ तो सब जान सकता हूँ परन्तु जब मैं शुद्ध हो जाऊं तभी ब्रह्म बनूंगा।

स्वामी जी ने कहा कि ब्रह्म में अशुद्धता कहाँ से आई, शुद्ध क्यों नहीं होते ?

इसी प्रकार की बातें एकदिन हुई परन्तु उन्होंने फिर कभी ऐसे प्रश्न नहीं पूछे; प्रत्युत स्वामी जी से प्रीतियुक्त बातें करते रहे और प्रेम रखते रहे। स्वामी जी भी उन की योग्यता की प्रशंसा करते थे। (लेखराम पृष्ठ ८३४)

(संक्षिप्त विषय सूची)

मतमतान्तर

तीर्थ—काश्यादि स्थान, गंगादिक तीर्थ, एकादशी आदिक व्रत, राम, शिव आदि नामस्मरण पापों में प्रवृत्त कराते हैं—५२/४-३०, वेद में आये गंगा-यमुना का नाम दो नाड़ियों का है १०६/२, मूर्त्तिपूजा वेदविरुद्ध है १३४/२०, गंगा जी को मुक्ति देने और पाप छुड़ाने का साधन नहीं मान सकता १३७/२४–१३८/१५, (हरिद्वार में) हर की पौड़ी नहीं किन्तु हाड़ की पौड़ी है १६४/१।

श्राद्ध तर्पण—जीते पितरों की श्रद्धा से सेवा पुरुषार्थ व पदार्थों से तृप्ति करनी श्राद्ध और तर्पण कहलाता है १५२/११, मरे हुओं के नाम से देना निष्फल है और शास्त्र में भी ऐसा ही लिखा है २०६/२४, २०६/३ से २१०/२५।

विविध—रामनाम लैने से परमेश्वर नहीं मिल सकता २४४/१७, कबीर पन्थ २४०/२१—२४१/११, राधास्वामीमत हिन्दु धर्म से अच्छा नहीं २१३/२२, दार्शनिक व विचारक बन्दर से मनुष्य का होना मानता है यह सर्वथा मिथ्या है—१७७/१२।

अवतारवाद—परमेश्वर का कदाचित् जन्म-मरण नहीं होता ६२/२५, भला परमेश्वर का कभी अवतार हो सकता है। १३८/२०,१६८/३, क्या ईश्वर देहधारण करता है। १८१/२८।

मूर्त्तिपूजा—६/८, ७/१४, ८/२०, ९/७, १०/२६, १५/१, १८/३, मूर्त्तिखंडन की बात क्यों और कैसे उठाई १६५/१, मूर्त्तिपूजा वेदों में नहीं २७/१७–२२, ३७/११, ३६/६, ४७/१५, ५६/७, ५७/१०, ६३/२०, १६३/१, १६४/२६, २४५/१८ सदाचार पञ्चमहायज्ञ है न कि मूर्त्तिपूजा ९/१, क्या भाव से वे देव हो जाते हैं—५१/२५, मूर्त्तिपूजन की शिक्षा न किसी ऋषि-मुनि के वचन से और न किसी शास्त्र के उद्धरण से सिद्ध है, ३४/२४, न तस्य प्रतिमास्ति० १३५/४, हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे० १३५/२२, अन्धन्तमः प्रविशन्ति० १३५/२८, युक्ति से भी ठीक नहीं १३६/७, उस समय शिव, विष्णु आदि मनुष्य के नाम होते थे २४६/३।

जैनमत

बौद्ध और जैन एक ही मत के नाम २२१/१२, मत की दृष्टि से शाखाएं एक ही मत की होती हैं २२१/१८, आत्माराम जी के स० प्र० विषयक आक्षेपों का उत्तर २१७/२९–२२६/२१, विवेकसार ग्रन्थ के लेख पर कुछ शंकाएं २२४/२५, उष्ण-जल करने में अधिक दुःख पाते हैं २३३/१२, मुख पर पट्टी बांधने पर प्रश्नोत्तर २३२/५–२३३/९, आप पुस्तक "रत्नसार भाग" को विश्वसनीय नहीं समझते हो तो क्या हुआ २२३/५, जल में अनन्त जीव विषयक प्रश्न १५०/१५. (जैन मत में) तुम्हारे मत में ऐसी ऐसी बहुत सी बात अयुक्त हैं–२३३/२८–२३४/१२, २३५/२२–

२३९/१३, आप और आप लोगों के पथ पदर्शकों ने ऐसी भाषा बिगाड़ कर अपनी भाषा बना ली है—जैसे धर्म का धम्म पद २२२/२९।

ईसाईमत

चमत्कार विषयक प्रश्नोत्तर ११५/१५–११९/१३, पाप क्षमा पर प्रश्नोत्तर १९३/८-२०५/२०, ईसाइयों ने उसमें बहुत कुछ घटत-बढ़त कर दी है (मौलवी) ८८/१९, ईसा और इन सब जीवों में क्या भेद है २०२/४, २२७/९ से २२९/१३, शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या से मृत पुरुषों को जिलाया था ७६/९, रोम के पोप २२८/३०–२२९/१३, क्या ईश्वर देहधारण करता है १८१/२८–१९३/६।

बाइबिल—तौरेत तथा इंजील इत्यादि की समीक्षा—१०८/१६, १५५/३१–१५७/१४–१६१/९, १६१/८–१९३/६,

ईसामसीहा पर विश्वास २३९/१७–२९, लूत पैगम्बर का अनाचार १२५/१–३१ (ईसाइयो तुम्हारी) उन्नति के कारण–ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययन, एक स्त्री प्रसंग, दूरदेश यात्रा, देशप्रीति आदि हैं ११०/२।

मुसलमानमत

जो विरुद्ध करता है तो न्यायकारी नहीं ठहर सकता १०४/२३, मुक्ति देने में ईश्वर पराधीन है तो वह ईश्वर नहीं हो सकता १०६/१७, ईश्वर के दरबार में भी फरिश्तों का होना मानोगे तो और बहुत से दोष ईश्वर में आवेंगे १०४/२४,।

कुरान—कुरान तुम्हारा ईश्वरीय वचन नहीं हो सकता १४/२७, खुदा ने उनके मन में प्रेम उत्पन्न क्यों न किया ८/१४, ईश्वर चाहे सो करे ऐसा ठीक नहीं १०६/३, कुरान को हाथ से पृथिवी पर रख दिया २४३/१–८, दाढ़ी रखने से प्रयोजन, ऊँची बांग देते हो यह क्या ईश्वर की उपासना है ? ८/७, कुरान अलग आसमानी पुस्तक नहीं हो सकता ८८/१३, क्या मुसलममान दासी-पुत्र नहीं २४०/१७, २४२/१७।
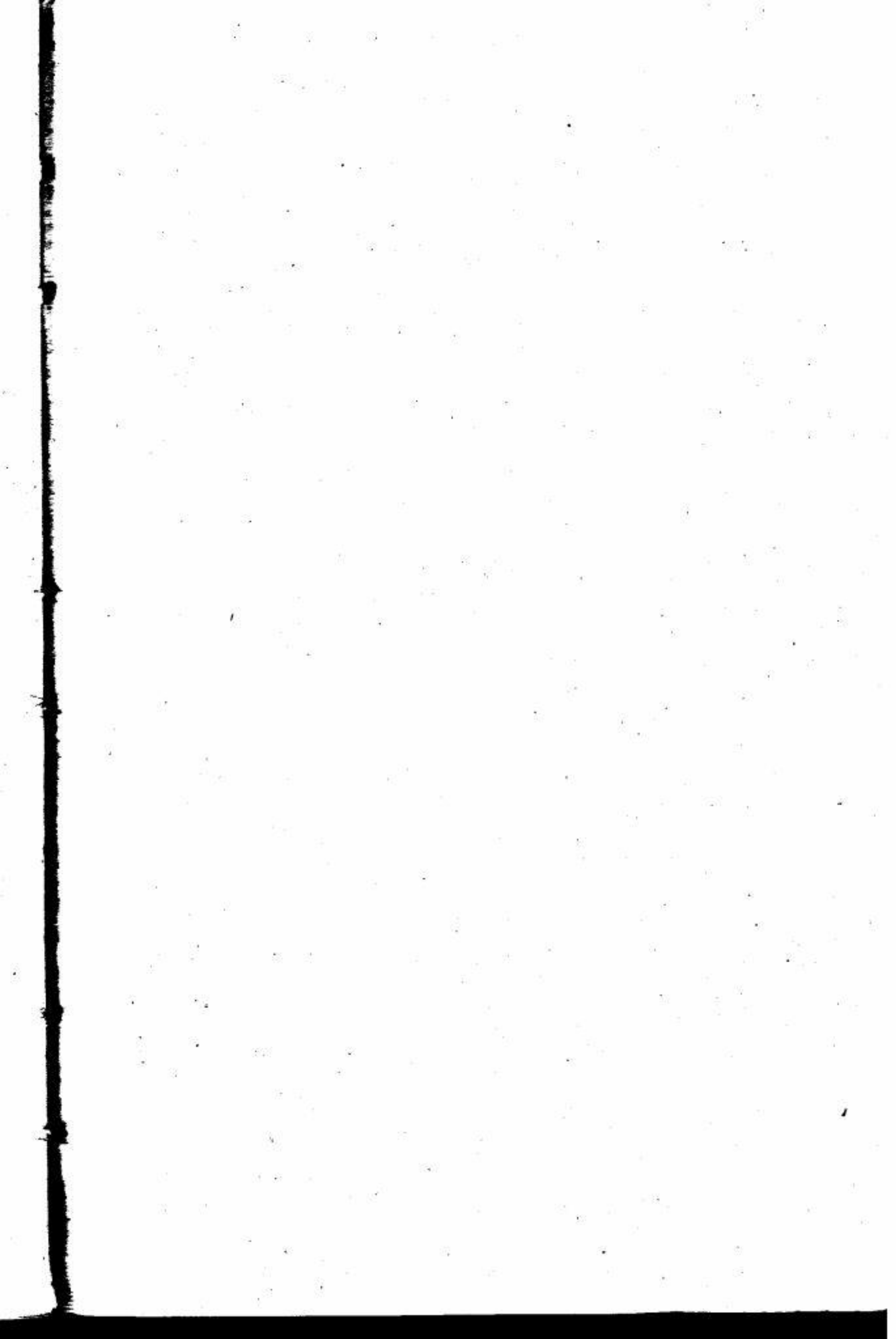
आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट के प्रकाशन